प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली-६

चतुर्थ संस्करण
दिसम्बर, १९५७

विद्यार्थी संस्करण

मूल्य
ढाई रुपये (२५० नये पैसे)

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

कीर्ति-स्तम्भ

हेमंत को

चाहते हो तुम कि मैं तुमको खिलौना दूँ।
हाँ, खिलौना चाँद-सा सुन्दर सलौना दूँ।
किन्तु तुमको दे रहा मैं अक्षरो की दीपमाला।
विश्व का तम कर न पाये जिंदगी का मार्ग काला।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

महाराणा रायमल	: मेवाड़ के महाराणा
संग्रामसिंह	: महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र
पृथ्वीराज	: महाराणा रायमल का द्वितीय पुत्र
जयमल	: महाराणा रायमल का तृतीय पुत्र
सूरजमल	: महाराणा रायमल के बड़े भाई ऊदाजी का पुत्र
राजयोगी	: भवानी के मन्दिर का पुजारी
कर्मचन्द	: अजमेर का नगर सेठ
	कुछ भील, कहार, कुछ सैनिक, द्वारपाल आदि

स्त्री-पात्र

शृंगारदेवी	: मेवाड़ की महारानी
तारा	: राव सूरतान की पुत्री, पृथ्वीराज की पत्नी
ज्वाला	: सूरजमल की छोटी वहन
यमुना	: दिल्ली की गणिका जो जासूसी का कार्य करती है
	दासी, सैनिकाएं आदि

दर्पण

भारतीय इतिहास में राजपूत-काल की वीर-गाथाएँ मृतवत प्राणो को नव-जीवन और नवस्फूर्ति प्रदान करने वाली हैं। देश की उदित हो रही पीढी को वीर, साहसी, त्यागी, निर्भय एव देश-प्रेमी बनाने के लिए इन वीर-गाथाओ का ओजस्वी शब्दो में उपस्थित किया जाना आवश्यक है। किन्तु हमें याद रखना चाहिये कि वीर पुरुषो के केवल वीरतापूर्ण-कार्यों के वर्णन से ही राष्ट्र को बल-वान् बनाने की शक्ति नही पा सकेंगे। वीरता, साहस और निर्भयता बहुत ऊँचे एवं अपेक्ष्य गुण हैं, लेकिन इन गुणो के साथ स्वार्थ-त्याग, बलिदान, विवेक और उदारता आदि गुणो का समावेश भी अपेक्षित है। राजपूत के समान वीर, साहसी, आन पर प्राण देने वाली जाति ससार में सभवत· दूसरा नही है, लेकिन फिर भी ये गुण राजपूतो को पराधीनता के बधन में बधने से बचा नही सके। इसका कारण उनमें दूरदर्शिता का अभाव, पारस्परिक एकता का न होना एव अपनी शक्ति को पारस्परिक कलह में बर्बाद करते रहना है। यह कलह केवल पड़ोसी राज्यो तक ही सीमित नही रही बल्कि एक ही राजकुल के व्यक्ति मुकुट-मोह में पड़कर एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गये। बेटे ने बाप के प्राण लिये, भाई ने भाई का गला काटा, ऐसे मनुष्यता को लज्जित करने वाले उदाहरण त्याग, तप और बलिदान की सस्कृति वाले भारत ने उपस्थित किये। प्रस्तुत नाटक कीर्ति-स्तम्भ गृह-कलह के ऐसे ही ऐतिहासिक घटना-चक्र को लेकर लिखा गया है।

मेवाड़ के इतिहास में महाराणा कुभा के काल में मेवाड राज्य की कीर्ति और शक्ति उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुच गई थी। कुम्भा ने अनेक बार मालवा के सुल्तान और गुजरात के बादशाह को पराजित किया एवं दिल्ली की लोदी सल्तनत का भी दर्प चूर्ण किया। कुम्भा केवल तलवार के ही धनी नही थे, अपितु उन्होंने अपने राज्य-काल में साहित्य एवं ललित कलाओ की अभि-वृद्धि भी की। ऐसे गुणी, वीरपुरुष, सुशासक, कला-प्रेमी का प्राणांत मुकट के

मोह में विवेक और मनुष्यता को खो देने वाले अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी (उदयसिंह) द्वारा हुआ। इस घटना के बाद मेवाड के राजघराने में कलह का ताडव प्रारम्भ हुआ जिसने मेवाड़ राजवश के उज्ज्वल यश को धब्बा तो लगाया ही, साथ ही मेवाड़ राज्य का विस्तार कम कर दिया, उसके हाथ से राजपूतो का नेतृत्व भी छिनवा दिया। महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र संग्रामसिंह (राणासांगा) की दूरदर्शिता, त्याग, वीरता एवं साहस ने इस अंतःकलह की ज्वाला को शात किया और मेवाड़ के गत गौरव को पुनः प्राप्त ही नहीं किया बल्कि उसे भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया।

महाराणा कुम्भा के ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी ने पिता की हत्या कर मेवाड़ का राज-मुकट अपने मस्तक पर धारण किया था। तब हत्यारे के अनुज रायमल सामन्तो एवं प्रजा के सहयोग से अपने अग्रज को परास्त कर मेवाड़ के महाराणा बने। ऊदाजी शांत होने वाले जीव न थे, वह दिल्ली के लोदी बादशाह की शरण में गये और अपनी पुत्री का विवाह उससे करने का वचन देकर, सहायता प्राप्त की। ऊदाजी की पुत्री ज्वाला एवं पुत्र सूरजमल को अपने पिता का यह कार्य पसन्द नहीं आया और उन्होंने पिता के विरुद्ध रायमल का साथ दिया। दिल्ली की सेना पराजित हुई और ऊदाजी के जीवन का भी अन्त हो गया। मेवाड़ के राजकुल का सम्मान रखने के लिए पिता से भी विद्रोह करने वाले सूरजमल के हृदय में भी मेवाड़ के राजमुकट का मोह जागा और महाराणा रायमल के तीनो पुत्रो—संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल, में भी युवराज-पद पाने के लिए प्रति-स्पर्धा प्रारम्भ हुई। इस अंत.कलह ने भीषण रूप धारण किया। इसी अंतःकलह का चित्रण प्रस्तुत नाटक है।

सूरजमल को कर्नल टाड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनाल्स आफ राजस्थान' में एक स्थान पर संग्रामसिंह का काका (चाचा) लिखा है, दूसरे स्थान पर ऊदाजी का पुत्र। मैंने नाटकीय सुविधा के लिए उसे ऊदाजी का पुत्र मान लिया है। ऐतिहासिक नाटक ऐतिहासिक व्यक्तियों एव घटनाओ को लेकर लिखा जाता है, फिर भी इतिहास और नाटक में कुछ अन्तर आ ही जाता है, क्योंकि नाटककार कल्पना की कूची से इतिहास के फीके चित्रो में रंग भरकर उन्हें आकर्षक बनाता है।

प्रस्तुत नाटक की लेखन-कला के सम्बन्ध में नया कुछ भी मुझे नही कहना। मेरे अन्य नाटको के समान यह भी, तीन अको में और प्रत्येक अक कुछ दृश्यो में विभाजित है। आज के कुछ भारतीय नाटककार विदेशी भाषाओ के नाटको की देखा-देखी अंको का दृश्यो में विभाजन करना छोड़ रहे हैं। किन्तु नाटको में अनेक स्थानो पर विभिन्न कालो में घटित घटनाओ का कथोपकथन में वर्णन करना पड़ता है, जो वर्णन पाठक अथवा दर्शक को उबा देता है। अनेक दृश्यो में विभाजित करने से रंगमच पर अधिक क्रियाएँ एव अधिक घटनाएँ होती हुई दिखाई जा सकती हैं जिससे नाटक में अधिक चुस्ती और गति आती है।

भारत के रंगमच को विज्ञान की पूरी-पूरी सहायता प्राप्त नहीं है। यहां घूमनेवाला (Revolving) रगमच नही है, अतः यहां का नाटककार दृश्य-रचना में अनेक बंधनो में बधा रहता है। मान लीजिए अभी एक राजमहल का दृश्य दिखाया गया, इसके बाद फिर किसी बड़े भवन के अन्दर का दृश्य दिखाना है। आज यह भारत के रंगमंच पर सभव नही है। एक गहरे दृश्य (Deep Scene) के बाद दूसरा दृश्य, जिसमें सजावट भी है, नही दिखाया जा सकता, इसीलिए दोनों के बीच कम गहरा दृश्य, जिसमें रगमच की बहुत कम चौडाई प्रयोग में आये और सजावट भी न करनी पडे, रखना पड़ता है, ताकि रंगमच का जो भाग पर्दे के पीछे है, उसमें आगामी दृश्य तैयार होता रहे। ऐसा करने में कथा को कभी-कभी अनावश्यक मोड़ देना पड़ता है, किन्तु यदि नाटककार रगमच का ध्यान रखता है, तो उसे ऐसा करना ही पड़ता है।

इस नाटक में स्वगत एव एकात भाषण सर्वथा नही हैं। स्वगत भाषण तो अस्वाभाविक है ही और एकान्त भाषण कहीं स्वाभाविक हो सकता है—जैसे किसी पागल के चरित्र में—किन्तु अधिकाश में अस्वाभाविक ही होता है। एकात भाषण में पात्र के मस्तिष्क में चलने वाला विचार-सघर्ष ही प्रकट होता है। किन्तु क्या स्वाभाविक जीवन में कोई इस प्रकार सोचने की क्रिया करता है कि वह चिल्लाकर बडबडाने लगे ?

नाटक में पात्रो की संख्या अधिक नही होनी चाहिये। थोड़े पात्रो के चरित्र विकसित करने में सुविधा रहती है। इस नाटक में मालवा के सुलतान, गुजरात के बादशाह, दिल्ली के बादशाह, सग्रामसिह की माता, सिरोही-नरेश

पहला अंक

पहला दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ दुर्ग में महाराणा कुंभा द्वारा वनवाया हुआ कीर्ति-स्तंभ। समय—प्रभात। पर्दा उठने के पहले नेपथ्य से अनेक सैनिकों के सम्मिलित स्वर में गान सुनाई देता है।)

गान— झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इसका रंग केसरिया है,
दिनकर इसके मध्य उगा है,
मानो अभी प्रभात हुआ है।
छाया प्राणों में उजियारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

लहर-लहर लहराने वाला,
उर मे जोश जगाने वाला,
करता रण-मद मे मतवाला,
वीरों को प्राणों से प्यारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

बाप्पा के वंशज वलिदानी,
एकलिंग के गण अभिमानी।
कभी शत्रु से हार न मानी।
यम को भी रण मे ललकारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

(अन्तिम छन्द गाया जा रहा है कि पर्दा उठता है। कीर्ति-स्तम्भ का केवल उतना भाग दिखाई देता है जितना रंगमंच की ऊँचाई तक आ सकता है। कीर्ति-स्तम्भ पर हिन्दू देवी-देवताओं की कलापूर्ण

मूर्तियाँ अंकित दिखाई देती हैं। महाराणा रायमल एवं उनके नवयुवक पुत्र संग्रामसिंह तथा पृथ्वीराज एवं जयमल प्रवेश करते हैं। महाराणा रायमल मेवाड़ की राजसी पोशाक में हैं, मेवाड़ राज्य का विशेष राजचिह्न छंगी धारण किये हुए एवं हाथ में दुधारा लिए हुए हैं। तीनों राजकुमार भी भव्य राजपूती साज-सज्जा में हैं और तीनों ही अपने हाथो में तलवार लिये हुए हैं।)

रायमल—(उल्लसित होकर) मेवाड के वीर सैनिको की गंभीर वाणी में मेवाड़-राज्य-पताका का यह यश-गान सुनकर प्राण पुलकित हो उठते है।

संग्रामसिह—हाँ पिताजी, सहस्रों प्राणो का सम्मिलित स्वर मेवाड़ी वीरो की एकता का परिचय दे रहा है। सागर की उत्ताल तरंगो के सुगम्भीर गान-सी इस स्वर-लहरी मे प्रसुप्त प्राणों को जाग्रत कर देने की शक्ति है।

पृथ्वीराज—निश्चय ही, इस उन्मत्त कर देने वाले तुमुल निनाद को सुनकर मै तो नशे मे झूम उठता हूँ। जी चाहता है, चट्टानों को भुजाओं मे भरकर चूर कर डालूँ, तूफान से आदोलित पारावार मे तरणी छोड़कर प्रलयकरी लहरों पर झूला झूलूँ, आकाश के नक्षत्रो को तोड़ लाऊँ।

जयमल—मेवाड़ की राज्य-पताका के गौरव की रक्षा करने के लिये हम यम से भी लोहा लेने को प्रस्तुत है।

रायमल—मुझे अपने सुयोग्य, वीर, सुपुत्रों पर अभिमान है। मेवाड की चिरचंचल राज्यलक्ष्मी शताब्दियो से गहलोतों के रक्त से अभिषिक्त हो रही है, किन्तु अभी उसकी रक्त-पिपासा शान्त नही हुई। (थोड़ी देर विचार-मग्न रहकर) चित्तौड़ के प्रथम शाका की गाथा से तुम परिचित हो ?

संग्रामसिह—ऐसा कौन अभागा मेवाड़ी होगा जो महासती वीरांगना पद्मिनी के जाज्वल्यमान जौहर की गाथा से अनुप्राणित नही होता।

रायमल—महासती पद्मिनी के जौहर की ज्वाला मेवाडियो के प्राणो को चिरप्रज्वलित रखेगी, किन्तु मुझे तो आज महाराणा लाखा और उनके ग्यारह पुत्रो के बलिदान का अमर आख्यान याद आ रहा है। मेवाड की राज्यलक्ष्मी ने स्वप्न मे महाराणा लाखा से कहा था—"मै भूखी हूँ—मुझे राजबलि चाहिये—गहलोत राजवश के बारह वीर पुरुषो का बलिदान चाहिये।"

सग्रामसिह—हाँ पिताजी, महाराणा लाखा और महारानी ने नित्य एक-एक कर अपने ग्यारह पुत्रो को रण-सज्जा मे सजाकर, हृदय-रक्त से टीका कर, आरती उतारकर मुस्कराते हुए वीर-गति पाने को रणभूमि मे भेजा था और दिशाओ ने विस्मित होकर देखा था कि उनकी आखों में एक भी अश्रु-विन्दु नही झलका।

रायमल—हाँ बेटा, तप्त मरुस्थल के समान उनके लोचन जलहीन थे। राजपूत को अपना हृदय पत्थर का बनाना पड़ता है।

जयमल—किन्तु, पिताजी आपको अकस्मात् महाराणा लाखा के उस भयानक स्वप्न की याद क्यों आई? क्या आपने भी···

रायमल—(बात काटकर) मैने स्वप्न नही देखा। बेटा! मै तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आकाश से बाते करने वाला जो यह कीर्ति-स्तम्भ, खड्ग से मेवाड की राज्यलक्ष्मी की माँग मे अखड सिंदूर भरने वाले पूज्य पिताजी महाराणा कुम्भा ने खडा किया है, उसकी आधार-शिलाये काँप रही है। जिस प्रकार घोर शीतकाल की रात्रि मे निर्धन नग्न व्यक्ति की कृश काया थर-थर काँपती है उसी प्रकार आज कीर्ति-स्तम्भ की शिलाएँ काँप उठी है।

पृथ्वीराज—शंकाशीलता कायरो का स्वभाव है पिताजी, आपको व्यर्थ विभ्रम मे नही पड़ना चाहिये।

रायमल—(रोषयुक्त मुद्रा में) बड़ी दया की तुमने जो अपने पिता को केवल कायर और 'विभ्रम में पडा' ही कहा—यह नही कहा कि

मेरे मस्तिष्क मे विकार उत्पन्न हो गया है, जिस प्रकार तुम्हारे ताऊ ऊदाजी ने स्वर्गीय महाराणा कुम्भा के सम्बन्ध में कहा था और अपने पिता के मस्तिष्क का विकार दूर करने के लिये उनका मस्तिष्क ही काट डाला।

पृथ्वीराज–क्षमा कीजिये पिताजी, आपने मेरा आशय नही समझा। कीर्ति-स्तम्भ की दृढ़ता पर अविश्वास करना सीसोदियो* के साहस और शौर्य पर सदेह करना है।

रायमल–साहस और शौर्य तो सीसोदिया-रक्त के स्वाभाविक गुण है, किन्तु ये गुण दोधारी तलवार के समान है, जिनका असावधानी से प्रयोग करने से स्वय के आहत होने की सभावना रहती है। ये सद्‌गुण अवगुण बनकर आत्म-नाश का कारण बन जाते है।

संग्रामसिह–बन क्या जाते है, बने हुए है। साहस और शौर्य अधे हैं—उन्हे विवेक की आँखे चाहिये। शक्ति हृदय-हीन है, उसे बलि-दान-भावना से कोमल-हृदया बनाने की आवश्यकता है।

रायमल–तुम ठीक कहते हो, संग्रामसिंह, बाप्पा रावल के वशजों को अभिमान, स्वार्थ, सत्ता-प्राप्ति की तृष्णा, राज्य-लिप्सा और भयानक दुर्गुणो ने ग्रस रखा है, तभी तो मै कहता हूँ कीर्ति-स्तभ की शिलाये काँप उठी है।

जयमल–जड़ कीर्ति-स्तभ भूकप के अतिरिक्त किसी और कारण से भी काँप सकता है क्या, पिताजी?

रायमल–कीर्ति-स्तंभ को जड़ कहकर तुम अपनी जड बुद्धि का परिचय दे रहे हो जयमल! मै तो इस कीर्ति-स्तंभ के रूप मे स्वर्गीय महाराणा कुम्भा को ही देख रहा हूँ, जो, जान पड़ता है, अपने सबल हाथों मे मालवा के सुलतान और गुजरात के बादशाह की

*मेवाड राजवशी प्रारम्भ मे गहलोत कहलाते रहे—बाद में सीसोदिया कहलाये। इस नाटक में दोनो ही नामो का प्रयोग किया गया है।

गर्दन थामे खड़े है, जिन पर विजय पाने के उपलक्ष्य मे यह कीर्ति-स्तभ स्थापित किया गया है।

सग्रामसिह–निश्चय ही कीर्ति-स्तंभ का प्राणवान् अस्तित्व सीसोदियाओ को युग-युग तक प्रेरणा प्रदान करेगा।

रायमल–किन्तु कीर्ति-स्तभ घायल हो गया है।

पृथ्वीराज–घायल हो गया है ?

रायमल–हाँ पृथ्वीराज ! कीर्ति-स्तम्भ को मर्मान्तिक आघात पहुँचा है। आज उसकी काया के साथ आत्मा भी घायल है। ऊदाजी ने अपने पिता वीर शिरोमणि महाराणा कुभा पर जो खड्ग-प्रहार किया था उसने कीर्ति-स्तंभ को क्षत-विक्षत कर दिया है। मुकुट के मोह मे पडकर एक पुत्र ने, वाप्पा रावल के एक वंशज ने, पिता के प्राण ले लिये, इससे इस स्तभ की प्रत्येक शिला काँप रही है।

पृथ्वीराज–निश्चय ही ऊदाजी ने मनुष्यता को लज्जित करने वाला नृशस कार्य किया है, किन्तु मै पूछता हूँ कि क्या उनका यह दुष्कर्म सर्वथा अस्वाभाविक है ? पिता जब सत्ता-मद मे चूर रह-कर बूढ़े होने पर भी अपने पुत्र के सबल हाथो मे शक्ति और अधिकार नही सौंपते तब पुत्र की आकाक्षाएँ पथ-भ्रष्ट हो जाये तो उसमे अस्वाभाविक क्या है ? स्वर्गीय महाराणा कुम्भा ने महाविटप की भाँति छाकर अपने आत्मीयजनो के विकास को रोक दिया। ऊदाजी का असन्तोष तो अवरुद्ध ज्वालामुखी की भाँति फट ही पडा, किन्तु पिताजी, आपको भी तो निर्वासित जीवन ही व्यतीत करना पडा। मै तो कहूँगा आपमे पिता की अन्यायपूर्ण आज्ञा का सामना करने का साहस नही था।

सग्रामसिह–पृथ्वीराज, तुम्हारे प्राणो मे यह विष किसने भर दिया ? पिताजी यदि ऊदाजी की भाँति राज्य-सिहासन पर आसीन होने

के लिये पिता पर खड्ग-प्रहार करते तो क्या संसार उसे वीरता कहता। राजा बनने की अपेक्षा मनुष्य होना मानव के लिये अधिक गौरव की बात है, पृथ्वीराज ! प्राण लेने की वीरता से त्याग की वीरता महान् है।

पृथ्वीराज—कायरता का दूसरा नाम त्याग है। राज्य-लिप्सा, सत्ता की आकांक्षा, शासन करने की प्रबल इच्छा राजपूत की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मै पूछता हूँ, क्या पिताजी ने राज्य-लिप्सा-वश ही अपने अग्रज ऊदाजी से मेवाड़ का राज्य नही छीना ?

संग्रामसिह—कदापि नही। हत्यारे को दड देना एवं मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा करना आवश्यक था, केवल इसीलिये पिताजी को मेवाड़ के राजमुकुट के लिये संघर्ष करना पड़ा, अन्यथा वह एक बार सिंहासन पर लात मारकर चले ही गये थे।

पृथ्वीराज—क्योकि वह जानते थे कि बडे भाई के रहते छोटे भाई का सिंहासन पर कोई अधिकार नही है। जो वस्तु उनकी नही थी उसी का त्याग किया था उन्होने। हुँ—इसे तुम त्याग कहते हो ?

रायमल—पृथ्वीराज, तुम्हारी उद्दंडता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। मेरे स्थान पर महाराणा कुंभा होते तो इसी क्षण तुम्हें मेवाड़ की सीमा से निर्वासित कर देते।

पृथ्वीराज—सत्य को प्रकट करने का पुरस्कार यदि मेवाड़ राज्य से निर्वासन के रूप में प्राप्त हो तो पृथ्वीराज उस अभिशाप को वरदान ही मानेगा—क्योकि उसे नया राज्य स्थापित करने का अवसर प्राप्त होगा।

संग्रामसिंह—ऊदाजी की भाँति तुम्हारे प्राण भी राज्य-लिप्सा से व्याकुल है, पृथ्वीराज !

पृथ्वीराज—जिनका पेट भरा हुआ है, वे भूखो की व्याकुलता की हँसी उड़ा सकते है। आज के मेवाड़ के युवराज एवं आगामी कल के

महाराणा सग्रामसिह जी ! मेवाड के वर्तमान परम प्रतिष्ठित राजवश के संस्थापक अपने मामा के शव पर अपना राजसिहासन रखकर एक आदर्श कायम कर गये है।

रायमल—छि पृथ्वीराज, तुम सत्ता-प्राप्ति के मद मे उन्मत्त हो गये हो। वीरवर बाप्पा रावल के शुभ उद्देश्य से किये गये आदर्श कार्य को अपने अतर की कालिमा से कलकित करने का यत्न मत करो। जहाँ देश-हित का प्रश्न उपस्थित हो हमे सारे नाते, ममता, माया और मोह के ऊपर उठकर कार्य करना चाहिये। कृष्ण को अपने अत्याचारी मामा का वध करना पडा था, विदेशियो के हाथ देश की स्वाधीनता को रहन रखने का सकल्प करने वाले देश-द्रोही मामा के मस्तक से राजमुकुट छीनकर विदेशी सत्ता की भारत मे वढती हुई बाढ को अपने पराक्रम से रोकने वाले बाप्पा रावल का भारतीय इतिहास चिरऋणी रहेगा। सदुद्देश्य के हित हमे अपनो से भी सग्राम करना पड जाता है। मैने भी अपने अग्रज पितृहन्ता ऊदाजी से राजमुकुट छीनकर आदि पुरुष बाप्पा रावल की परंपरा का पालन किया है। ऊदाजी ने पिता की हत्या की, इस अपराध के लिये सभवत. मेवाड राजवश उन्हे क्षमा भी कर देता, किन्तु मालवा और गुजरात की विदेशी राजसत्ताओ को मेवाड राज्य की भूमि देकर अपना सहायक, सहायक क्या—स्वामी वनाना मेवाड का स्वाभिमान कैसे स्वीकार करता! मेवाड की वीर प्रजा, सीसोदिया शाखा के शूर वशज, मेवाड़ की सम्मान-रक्षा मे शताब्दियो से मस्तक चढ़ाते रहने वाले सामंत आदि सबके एक स्वर आग्रह को रायमल कैसे टालता? मेवाड़ राज्य का अस्तित्व जिनकी आँखो में शूल की भाँति चुभता है...

(रायमल का वाक्य पूर्ण भी नहीं होने पाता कि सूरजमल प्रवेश करता है। सूरजमल भी तीनों राजकुमारों के समान वहुमूल्य

वेश-भूषा में है एवं हाथ में तलवार लिये हुए है, किन्तु उसके वस्त्रो में लम्बी यात्रा के कारण कुछ मलिनता-सी आ गई है। आयु में वह संग्रामसिंह से बड़ा है, शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं चेहरा तेजस्वी है।)

सूरजमल—(महाराणा रायमल के चरण छूकर उनके अधूरे वाक्य में जोड़ता हुआ) सीसोदिया आज उन्ही के चरण चूमने मे अपना गौरव मानते है।

जयमल—(व्यग करते हुए) क्या पितृहंता के पुत्र को इसका पश्चात्ताप है?

सूरजमल—है क्यो नहीं? क्या मेरे शरीर मे गहलोत-रक्त प्रवाहित नही है, क्या मै भगवान् राम का वशज नही हूँ?

पृथ्वीराज—भगवान् राम के वंशज होते हुए भी तुम पितृहता ऊदाजी के पुत्र हो। तुम्हारा मुँह देखना भी पाप है।

संग्रामसिंह—पृथ्वीराज, अभी तो तुम ऊदाजी के अपराध को स्वाभाविक कह रहे थे और अब……

पृथ्वीराज—और अब मै उसका पुत्र होना भी अपराध कह रहा हूँ। यही कहना चाहते हो न? एक अभावग्रस्त व्यक्ति डाकू बन जाता है—यह स्वाभाविक है—किन्तु फिर भी उसके हिंसक कार्य अपराध ही है और उनके अपराधों का दण्ड समाज उसकी सन्तान को भी देता है।

सूरजमल—यदि सीसोदिया राजवश ने विवेक की आँखे खो दी है तो उन्हे त्रिलोचन शकर भी प्रकाश देने की क्षमता नही रखते। पिताजी ने जो किया उससे सम्पूर्ण शाखा लज्जित है, लेकिन पिता के अपराध का प्रायश्चित्त उसकी सन्तान करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध कर देना, उसकी कर्तव्य-भावना को घृणा के प्रहार से आहत कर देना और उसे भी पाप-पथ पर जाने को बाध्य करना क्या न्यायपूर्ण कार्य है?

रायमल—पिता के पाप का प्रायश्चित्त तुम कैसे कर पाओगे, सूरजमल?

सूरजमल–बाप्पा रावल की राजगद्दी के गौरव की रक्षा मे प्राणों की आहुति देकर काकाजी ! हत्यारे का बेटा होने के कारण ही तो मेरे अन्त.करण से मानवता की सम्पूर्ण सद्प्रवृत्तियाँ समाप्त नही हो गई ?

सग्रामसिह–पापी का पुत्र पुण्य के मार्ग पर अग्रसर होना चाहे तो समाज को उसका मार्ग प्रशस्त करना चाहिये ।

जयमल–इसका अर्थ हुआ कि वेश्या की पुत्री को समाज मे भद्रकुल की कन्या के समान विश्वास और आदर प्राप्त होना चाहिये ।

संग्रामसिह–अवश्य ! प्रत्येक व्यक्ति हमारे समाज का अंग है—समाज की शक्ति है । समाज के अगो को हम काट-काटकर फेकेंगे अथवा उन्हे गलने-सडने देगे तो समाज दुर्बल होगा ।

पृथ्वीराज–किन्तु दादा भाई, साँप का वेटा भी साँप होता है, यह प्रकृति का नियम है ।

सूरजमल–इसी नियम के अनुसार सिह का वेटा भी सिह होना चाहिये—तब महाराणा कुम्भा के पुत्र ऊदाजी कैसे हुए ?

सग्रामसिह–अच्छा-बुरा होना केवल वंश और माता-पिता के चरित्र पर निर्भर नही होता, पूर्वजन्म के सस्कार और इस जन्म की परिस्थितियाँ और वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है ।

पृथ्वीराज–मै केवल इस जन्म को मानता हूँ ।

सग्रामसिह–इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व-नियन्ता अन्धा है । ससार मे जो विषमता दृष्टिगोचर हो रही है—अर्थात् कोई निर्धन है, अभावो से पीड़ित है और कोई धनी है—सुखों के पालने मे झूलता है तो यह निष्कारण है ?

पृथ्वीराज–विषमता मनुष्यो के स्वार्थ की सृष्टि है । वैभव और सत्ता के धनी, दीन-दु खी और पीड़ितो के कष्टो और अभावो को पूर्व जन्म के कर्मो का फल कहकर अपने पापो को, अन्यायो को न्याय-

पूर्ण सिद्ध करने का यत्न करते है। यह ससार है दादा भाई, सघर्ष ही इसका जीवन है।

सूरजमल–इस तर्क-वितर्क मे मुझे अपनी बात कहने का भी अवसर नही मिलेगा क्या ?

रायमल–मेवाड मे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने की स्वतन्त्रता है, सूरजमल ! बोलो क्या कहना चाहते हो ?

सूरजमल–पिताजी पतन-पक में इतने लिप्त हो गये है कि अब वह राम के वशजों के मुख पर ऐसी कालिमा पोत देना चाहते है जिसे विधाता भी न पोछ पाये।

पृथ्वीराज–जैसे अभी उन्होने कुछ कसर छोड़ी है।

जयमल–पिता की हत्या से भी अधिक कुत्सित कार्य वह क्या करना चाहते है ?

सूरजमल–पिता की हत्या से भी अधिक घृणित कार्य हो सकते है जयमल ! पिताजी ने दिल्ली के लोदी बादशाह से सहायता पाने के लिये अपनी पुत्री ज्वाला का, सीसोदिया शाखा की एक राजकुमारी का विवाह उससे करना स्वीकार किया है।

रायमल–अर्थात् अभी यह कुल को कलकित करने वाला दुष्कृत्य हो नही पाया है।

सूरजमल–नही, क्योकि मैने ज्वाला को दिल्ली मे ही गुप्त स्थान पर छिपा दिया है, लेकिन दिल्लीपति की भुजाये विशाल है। उसके गुप्तचरो के जाल में वह कभी भी फँस सकती है। अतः हमे शीघ्र ही कुल-गौरव की रक्षा का उपाय करना चाहिये।

सग्रामसिंह–दिल्लीपति से लोहा लेने के अतिरिक्त और उपाय हो ही क्या सकता है ?

रायमल–सूर्य पश्चिम से भले ही उदित हो, किन्तु सीसोदिया राजवश की कन्या भारत की स्वाधीनता के शत्रुओ के हाथ मे नही जाने

पावेगी।

सूरजमल–जय हो, महाराणा रायमल की जय! सीसोदिया राजवंश की जय! महाराणा के निश्चय ने मेरे प्राणो मे नवजीवन सचारित कर दिया है।

पृथ्वीराज–पितृहन्ता ऊदाजी का पुत्र सत्य बोल रहा है या हमे फँसाने की चाल चल रहा है, इस सम्बन्ध मे मेरा मन दुविधा मे है। फिर भी मै प्रत्येक ऐसे प्रस्ताव का समर्थन करूँगा जिसमे लोहे से लोहा बजाने का अवसर प्राप्त हो।

सूरजमल–तुम सम्भवत: अपने ऊपर भी विश्वास नही करते?

पृथ्वीराज–पृथ्वीराज विपत्ति का भी विश्वास करता है, काले नाग से भी खेल सकता है। समय इसका प्रमाण देगा।

रायमल–बाप्पा रावल के वशज कुल-कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिये सर्वनाश के मुँह मे कूदना अपना कर्तव्य समझते हैं। कुछ भी हो, ज्वाला का दिल्लीपति से विवाह रोकना ही पड़ेगा। चलो, राजमहल मे चलकर इस सम्बन्ध मे योजना बनाई जाये।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान—दिल्ली में यमुना-तट से कुछ दूर पथ। समय—सूर्योदय के पूर्व ब्राह्ममुहूर्त। पर्दे से ढकी हुई पालकी में जिसे दो कहार ले जा रहे हैं, ज्वाला मंच के वाम पार्श्व से प्रवेश करती है। पालकी के साथ चार राजपूत सैनिक हैं, किन्तु हैं साधारण व्यक्तियों की वेश-भूषा में और इस प्रकार चल रहे हैं मानो पालकी से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे ही पालकी का प्रवेश होता है, वैसे ही दूसरे पार्श्व से भिखारिन के रूप में यमुना प्रवेश करती है। वह कुष्ठ रोग से पीड़ित जान पड़ती है—उसके हाथों में रोग के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं। यमुना आकर इस प्रकार खड़ी होती है कि पालकी को ढोने वाले कहारों की गति रुक गई है।)

पहला कहार—हट सामने से, चुड़ैल। रास्ते मे ही आ धमकी।

ज्वाला—(पालकी के अन्दर से बिना मुँह निकाले) कौन है ?

यमुना—रानीजी का राज बना रहे, सुहाग अटल रहे, अपाहिज कोढी भिखारिन को कुछ मिल जाये।

(पालकी के साथ साधारण वेश में चलने वाले सैनिक एक दृष्टि डालकर आगे बढ जाते हैं एवं दूसरे पार्श्व से प्रस्थान कर जाते है।)

ज्वाला—दूर हट, बड़ा सुहाग अटल करने आई है।

यमुना—रानीजी, जो मनुष्य पर दया करता है, उस पर भगवान् प्रसन्न होते है। भगवान् के नाम पर कुछ दे दो, माई। जिन्हे भगवान् ने दिया है उन्हे भगवान् की सन्तान दीन-दु:खियों को देना ही चाहिये।

पहला कहार—तू हटती है या धक्के खाना चाहती है।

यमुना—दाता दे और भण्डारी का पेट फटे। अरे भाई, मै तो रानीजी से याचना कर रही हूँ।

ज्वाला—तू बहुत ढीठ है री !

यमुना–रानीजी, यह ससार भी तो बहुत ढीठ है—गरीबो की पुकार पर जरा भी ध्यान नही देता। गरीवों की लाशो को कुचलती हुई अमीरो की पालकियाँ बढती जाती है।

दूसरा कहार–गरीब लोग भी तो खोपडी पर सवार होने का यत्न करते है।

यमुना–ओहो, मेंढकी को भी जुकाम होने लगा। कैसे बोलता है, मानो दिल्ली का नगर-सेठ है। धातु के दो टुकडो मे धनवानो की पालकी उठाने वाला तू किस बिरते पर धनवानो का पक्ष लेता है ?

ज्वाला–(पालकी का थोड़ा-सा पर्दा उठाकर बाहर झाँककर यमुना से) कौन है री तू ? (पालकी उठाने वालो से) जरा रुको।

(कहार पालकी को भूमि पर रखते हैं।)

यमुना–आप कौन हैं ?

ज्वाला–तुझे यह पूछने की आवश्यकता क्या है ?

यमुना–मै आपकी तरह पालकी मे मुँह छिपाये तो बैठी नही हूँ जो आप मुझसे पुछती है, 'तू कौन है ?' मेरी रोग-ग्रस्त अपाहिज काया अपना परिचय दे तो रही है। निर्दय भगवान् ने जिसे कोढी बना दिया है, समाज से जिसे केवल घृणा प्राप्त होती है, ऐसी पीडित नारी आप जैसी वैभव की पालकी मे बैठने वालियो से दया की भीख माँगकर ही अपना जीवन चला सकती है।

ज्वाला–सच कह, तू भिखारिन है ना री ?

यमुना–हे भगवान, वैभव ने जिनके हिये की दया छीन ली है वे अभाव-ग्रस्तो की दुर्दशा को भी धोखा समझते है। ससार मे मनुष्यता है ही नही क्या ?

ज्वाला–भिखारिन तो तू बनी है किन्तु भिखारिन की भाषा न सीख पाई।

पहला कहार–बोलती तो ऐसे है, मानो कभी दिल्ली की पटरानी

रही है।

यमुना–(व्यंगपूर्वक कहार से) कैसे मीठी बात कह रहे हो राजा। पटरानी और भिखारिन सब माया के खेल है—स्वप्न मे खेले जाने वाले नाटक है! क्या पता, किसी जीवन में यह कोढी भिखारिन किसी सम्राट की सम्राज्ञी रही हो, किन्तु आज तो पथ पर भटकने वाली दुखिया नारी है। आज तो वह तुम्हारे जैसे पालकी उठाने वाले की पत्नी भी नही बन सकती।

ज्वाला–तो तेरा इस कहार से ब्याह करा दूँ, बोल ?

यमुना–मेरा ब्याह तो यमराज से होगा।

ज्वाला–मरकर भी तू रानी ही बनना चाहती है। चीथड़े पहनने पर भी तेरा आकांक्षाओ के पंख लगाकर उड़ने वाला हृदय अपना रूप छिपा नही पाया। तू कोई भी हो—आज सक्राति का पर्व है—ब्राह्ममुहूर्त मे तूने याचना की है, तुझे भीख अवश्य मिलेगी। बढा हाथ।

(यमुना हाथ बढ़ाती है। ज्वाला पालकी में से हाथ निकाल कर फुर्ती से यमुना का हाथ पकड़ लेती है।)

यमुना–क्या करती हो, रानी जी ? कोढ छूत की बीमारी है।

ज्वाला–ह. ह: कोढ ! (पालकी से बाहर आती है।) स्वर्ण के लिए जीवन बेचने वाली नारी, तू स्वय समाज की छाती का कोढ है। किसलिये अपने सुकुमार शरीर को विकृत बनाती है, बोल ?

(यमुना हाथ छुड़ाना चाहती है। ज्वाला दूसरे हाथ से अपनी चोली से कटार निकालती है।)

ज्वाला–छूटने का यत्न मत करो। मै सक्राति के पर्व पर यमुना मे स्नान करने आई हूँ, तेरे रक्त से मुझे हाथ न रँगने पड़ें।

यमुना–बाप रे, भयानक स्त्री है आप !

ज्वाला–भयानक बने बिना इस युग मे नारी अपने सम्मान की रक्षा कर ही नही सकती।

यमुना–आप ठीक कहती है रानीजी, स्त्री को आत्मरक्षा के लिए हिसक बनना ही पड़ता है।

(यमुना भी अपने दूसरे हाथ से वस्त्रो में से छुरी निकालती है—इसी समय एक सैनिक आकर यमुना का छुरी वाला हाथ पकड़ लेता है। यह सैनिक उन्हीं चार व्यक्तियो में से है जो पालकी के साथ आये थे लेकिन आगे निकल गये थे।)

सैनिक–किन्तु पुरुष के कठोर हाथो से छुटकारा पाना नारी के बस का नही है।

(यह कहता हुआ सैनिक यमुना के हाथ से छुरी लेता है।)

ज्वाला–डरो नही, यमुना।

यमुना–क्या कहा ?

ज्वाला–दिल्लीपति के दरबार मे मैने तुम्हारा नृत्य देखा है—गाना सुना है। वेश बदलने पर भी तुम अपने स्वर के माधुर्य को छिपा न पाईं। तुम्हारे पहले शब्द ने ही दिल्ली दरबार की वह मद-भरी महफिल आँखो के आगे घुमा दी। दिल्लीपति की गुप्तचर बनकर किसी कुमारी की जुही की कली-सी पवित्रता के पीछे तुम हाथ धोकर क्यो पडी हो ? निश्चय ही तुम मे शक्ति है, किन्तु इस शक्ति का उपयोग करो दुष्टो को काली नागिन बनकर डसने मे।

यमुना–आपको भ्रम हुआ है, रानीजी।

ज्वाला–ज्वाला भ्रम से बहुत दूर है। तुम जैसी गणिकाओ को स्वर्ण की चमक से अधी बनाकर दिल्लीपति समझे है कि किसी भी नारी के जीवन से खिलवाड किया जा सकता है।

(यमुना नीचे पड़ा हुआ पत्थर उठाकर फेंकना चाहती है, लेकिन सैनिक उसके हाथ का पत्थर छीन लेता है।)

ज्वाला–पत्थर फेककर किसे बुलाना चाहती हो यमुना ! यमुना के तट पर रक्त की नई यमुना बहाना चाहती हो ? अपना भला चाहती

हो तो चुपचाप पालकी में बैठ जाओ। (यह कहते हुए कहार की तरफ देखती है।)

(कहार अपने कंधे पर पड़े हुए अगोछे से उसका मुंह बन्दकर उसे उठाकर पालकी में रख देता है।)

सैनिक—राजकुमारी जी! ऊदाजी आपके स्वभाव से परिचित है—जानते थे कि आप आज संक्रांति के पर्व पर यमुना-स्नान करने आयेगी और दिल्लीपति की शक्ति को चुनौती देगी। हमने समझ लिया था कि आज अवश्य वह आपकी खोज करायेंगे। यद्यपि हम अन्य पुण्यार्थियो से भी पहले आ गये है, तब भी खतरे से बाहर नही है।

ज्वाला—(पालकी में बैठती हुई) चिता नही. छिपे-छिपे जीवन बिताने से अच्छा है दुष्टो से दो हाथ करते हुए वीरगति पाना। आप लोगो के कहने से मैने पालकी का सहारा लिया, नही तो मै तो घोडे पर सवार होकर आती। (कहारों से) बढाओ पालकी।

(कहार पालकी बढ़ाते हैं। सबका प्रस्थान।)

(पट—परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(स्थान—रणभूमि। समय—लगभग संध्या। नेपथ्य में घोड़ो के टापो की आवाज़, हिनहिनाहट, हाथियो की चिंघाड, तलवारो की खनखनाहट, तथा तुरही एवं नगाडो की ध्वनियां सुनाई देती हैं, किन्तु उनका स्वर दूर से आता हुआ जान पडता है। अतः इतनी जोर का नही है कि मंच पर वार्तालाप करने वाले पात्रों की आवाज़ को दवा दे। कभी-कभी कोलाहल का स्वर ऊँचा भी हो जाता है। संग्रामसिंह और पृथ्वीराज हाथों में रक्त-रंजित खड्ग लिए हुए आते हैं। उनके वस्त्रो पर भी कहीं-कहीं रक्त दिखाई देता है।)

सग्रामसिंह—ओह, आज प्रभात से हमारी तलवारो ने क्षरण भर के लिए भी विश्राम नही लिया। सन्ध्या का आगमन निकट है, अस्तंगत सूर्य की किरणो ने आकाश मे लालिमा भरना प्रारम्भ कर दिया है और रणभूमि भी मानव रक्त से पूर्णत लाल हो चुकी है।

पृथ्वीराज—हाँ, आज रण का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया। प्राणों को तृप्ति प्राप्त हुई। सच तो यह है दादा भाई, कि जव शत्रु वलवान् होता है, युद्ध करने का वास्तविक स्वाद तभी आता है। हमारी सेना की अपेक्षा दिल्लीपति की सेना कई गुना है, फिर भी मेवाडी वीरो ने महारुद्र के गण बनकर शत्रु-दल का सहार किया है।

सग्रामसिह—और शत्रु के सैनिक साहस छोड रहे है।

पृथ्वीराज—अब हमे पूरे वेग से आक्रमण कर शत्रु का दिल्ली तक पीछा नही छोडना चाहिये।

सग्रामसिह—किन्तु भैया, ऐसा करना हमारी भूल होगी।

पृथ्वीराज—क्यो दादा भाई? क्या आपको मेवाडी वीरो की अजेय शक्ति पर विश्वास नही है?

संग्रामसिंह–विश्वास है, अटूट विश्वास है। मेवाड़ी वीरों की वीरता की परीक्षा अनेक बार काल ने की है। आज हमे यम से भी लोहा लेने का जो उत्साह प्राप्त है वह कहाँ से आया ? पूर्वजो की यश-गाथायें ही तो हमे अनुप्राणित करती है। पराक्रम की परंपरायें हमे प्राणो का मोह त्यागने की प्रेरणा देती है, किन्तु भैया, निर्भयता और साहस के साथ धैर्य और दूरदर्शिता का मेल हो जाय तो हमारे राजपूत सैनिक संसार पर विजय पा सकते हैं। तुमने विश्व-विजय करने की आकाक्षा रखने वाले महान् यूनानी शूर सिकन्दर का वृतात पढ़ा है ? उसने मिश्र और पारस के विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्यो की सेनाओ को क्या केवल उन्मत्त उत्साह से पराजित कर दिया था ?

पृथ्वीराज–मिश्र एवं पारस देश के वासियो के सम्बन्ध मे तो कुछ कहना कठिन है, किन्तु यह निर्विवाद है कि साहस और पराक्रम में भारतवासी यूनानियों से श्रेष्ठ सिद्ध हुए थे।

संग्रामसिंह–निश्चय ही, किन्तु भारत की धरती को रोदती हुई यूनानी सेना आई और रोदती हुई ही वापिस यूनान पहुँच गई।

पृथ्वीराज–किन्तु उसकी विश्व-विजय करने की लालसा वितस्ता की लहरों मे विलीन हो गई।

संग्रामसिंह–इसमे सिकन्दर की वीरता और रण-कौशल का अपराध नही है। मेरा विश्वास है कि यदि यूनानी सेना भारत में आगे बढती तो मगध-साम्राज्य की विशाल सेना भी उसकी गति को रोक नही पाती।

पृथ्वीराज–भारतीय विक्रम पर ऐसा अविश्वास करने का कारण ?

संग्रामसिंह–मै भारतीय विक्रम पर अविश्वास नही करता, किन्तु अपने देशवासियो की आत्मघाती दुर्बलताओ के प्रति आँखे मूँदकर भी नही रहना चाहता। जिस नद की विशाल सेना का वृत्तान्त मात्र

विश्व-विजयी यूनानी सेना के साहस को समाप्त करने के लिये पर्याप्त था, उसे चन्द्रगुप्त मौर्य एवं चाणक्य के नवीन सगठन ने सरलता से पराजित कर दिया। इसे भी हमे नही भूलना चाहिये। यदि भारत के दुर्भाग्य से सिकन्दर की ललकार सुनकर उसके सैनिक आगे बढते तो सभव था कि भारत पराधीनता की शृंखलाओ मे तभी से बँध जाता।

पृथ्वीराज—आपमे यही तो ऐव है दादा भाई, कि आप भूत और भविष्य के विचारो मे निमग्न रहकर वर्तमान के स्वर्ण-अवसर को गँवा देते है। 'मारवाड़ मनसूवे डूवा' कहावत आप पर चरितार्थ होती है। दिल्ली के विदेशी शासन का तख्ता उलट देने का अवसर आ पहुँचा है। हमे शत्रु की एक पराजय से ही सन्तोष नही कर लेना चाहिये। आँधी की तरह बढकर दिल्ली पर धावा वोलना उचित होगा।

संग्रामसिंह—मै तुम्हारे साहस की सराहना करता हूँ पृथ्वीराज! तुम सिंह की माँद मे घुसकर सोते हुए सिंह को जगाकर धरती पर रहकर सामने खड़े हो शिकार करते हो। मैं तुमसे कायर बनने को नही कहता, किन्तु राज्यो का संघर्ष बच्चो का खेल नही है, जरा-सी भूल से अनुचित आवेश मे विवेक खो देने से, हम जीती हुई बाजी हार भी सकते है। हमे जीवन के उत्तरदायित्व को समझना चाहिये। हमारा अस्तित्व रहे अथवा समाप्त हो जाय, यह बात महत्व की नही है, लेकिन अपने देश के भाग्य से खिलवाड़ करने का हमे अधिकार नही है।

(सूरजमल का प्रवेश। वह भी हाथ में रक्त-रंजित तलवार लिये हुए है। उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ घाव दिखाई पड़ते हैं।)

सूरजमल—भागा कायर, नही तो सीसोदिया वंश के सम्मान से खेलने की दुरभिलाषा रखने वाले को सदा के लिये धरती पर सुला देता।

संग्रामसिंह–कौन भाग गया, दादा भाई।

सूरजमल–वही कामी, कायर, सीसोदिया राजकुमारी से विवाह करने की दुष्कामना करने वाला नीच, पापी।

संग्रामसिंह–आप क्रोध में पागल हो रहे है। हमे शत्रु को भी अपशब्द नही बोलना चाहिये।

पृथ्वीराज–क्यों? शत्रु को धिक्कारने का हमें पूर्ण अधिकार है।

संग्रामसिंह–जो शस्त्र चलाने मे निपुण हैं, वे अपशब्दों का प्रयोग कर अपने ओछेपन का परिचय क्यो दे? पृथ्वीराज, शूरजन रण-भूमि में करनी करके दिखाते है और दुर्बल एवं पामर प्राणी केवल कोस-कर रह जाते हैं।

सूरजमल–तुम मुझे पामर कहते हो, संग्रामसिंह? बहुत अभिमान है तुम्हें अपने बल-पौरुष पर, तो सम्हालो तलवार, परीक्षा हो जाये कि सूरजमल श्रेष्ठ है या संग्रामसिंह। शत्रु से बाद मे निपट लेगे।

संग्रामसिंह–यही तो दोष होता है राजपूतों मे। वह क्षणिक आवेश में अपने लक्ष्य को भूल जाता है। संग्रामसिंह सूरजमल को तो क्या, पितृहता ऊदाजी को भी पामर नही कह सकता। इतना अवश्य है और मै मानता हूँ कि उन्होने राज्य-लिप्सा मे सुध-बुध खोकर एक महान् पातक कर डाला और पाप का प्रायश्चित करने की अपेक्षा पतन के पथ पर बढते ही जाना श्रेष्ठ समझा। पथ-भ्रष्ट ऊदाजी के सुपुत्र सूरजमल—मेरे आदरणीय दादा भाई—तुम्हे भी मैं सावधान करता हूँ कि आवेश पर सयम करना सीखो। मस्तिष्क की गरमी कही विचारो को विकृत न कर डाले और भूल से तुमसे भी कोई ऐसा कार्य न हो जाये जो कुल की कीर्ति को कलंकित करे।

पृथ्वीराज–(सूरजमल से) दादा भाई, हमें परस्पर बल-विक्रम की होड़ लगाने का समय भविष्य में मिलेगा। इस समय तो समर-भूमि

मे रण-चडी हमे पुकार रही है। वह कहती है, मै प्यासी हूँ, अभी बहुत प्यासी हूँ। हमारा प्रथम कर्तव्य उसकी प्यास बुझाना है। दादा भाई, सग्रामसिह तो मेवाड के भावी महाराणा है और वह भारत के भाग्य-विधाता बनने का स्वप्न भी देखते है, सो उन्हें स्वप्न देखने दो। हम तो वर्तमान को लेकर ही सन्तुष्ट है। रण-मद मे मत्त रहना ही हमारा जीवन है। सुनो, उधर कोलाहल बढ रहा है। सम्भवत वहाँ हमारी आवश्यकता है। यहाँ खड़े रहेगे तो कदाचित परस्पर ही तलवारे तानने लगेगे।

सग्रामसिह—यही तो मुसीबत है। राजपूत का तप्त रक्त रण चाहता है। शत्रु नही मिलेगा तो वह अपने स्नेहियो को ही शत्रु बनाकर उनसे लडेगा।

पृथ्वीराज—इसीलिये तो मै कहता हूँ उसे सतत युद्ध-यज्ञ मे मस्तको की आहुतियाँ देने का अवसर प्राप्त होना चाहिये। शान्ति राजपूत-जोवन के लिए अभिशाप है।

सग्रामसिह—राजपूत-स्वभाव से मै अपरिचित नही हूँ, पृथ्वीराज! युद्ध के अवसर हमारे सामने उपस्थित होते ही रहेगे। यह भारत का सक्रांति-काल है, विशेष रूप से मेवाड के भाग्य मे एक क्षण के लिए भी शान्ति दुर्लभ है। तीन तरफ से, गुजरात, मालवा और दिल्ली के साम्राज्य-विस्तार की आकाक्षा रखने वाले विदेशी सत्ताधीश उसे घेरे हुए है। आये दिन इनसे लोहा लेना ही पडता है। फिर भी मेवाड की कीर्ति अक्षुण्ण बनी हुई है। कभी किसी अलाउद्दीन ने अल्प समय के लिए मेवाड की ध्वजा को थोडा-सा झुका भले ही लिया हो, किन्तु पुनः कोई हमीर के समान महा-पराक्रमी वीर योद्धा सामने आया है और मेवाड की पताका को अभिमान के साथ उसने आकाश मे लहरा दिया है।

सूरजमल—निश्चय ही मेवाड ने पराजित होना नही जाना। उसकी

क्षणिक पराजय भी संसार के लिए ईर्षा करने योग्य रही है।

संग्रामसिंह—अवश्य ही, किन्तु यह सब होते हुए भी हमें मानना पड़ेगा कि हमारे वंश में वाप्पा रावल, हमीर, कुम्भाजी—जैसे समर-शूरों के अवतरित होने पर भी हम भारत भूमि की छाती पर से विदेशी शासन को समाप्त नहीं कर सके। जानते हो क्यों ?

सूरजमल—क्यों ?

संग्रामसिंह—क्योंकि हमारे यहाँ ऊदाजी जैसे व्यक्ति भी जन्म लेते रहे हैं। देश-द्रोह, स्वार्थ और कृतघ्नता ने हमारे राजनीतिक जीवन को कुत्सित कर डाला है।

(पुरुष सैनिक वेश में ज्वाला का प्रवेश। वह भी रक्त-रंजित असि धारण किए हुए है। वस्त्र एवं शरीर पर भी यत्र-तत्र रक्त के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्रदर्शित करते हैं कि आगन्तुक अभी रण में भाग लेता हुआ आ रहा है। ज्वाला के मुख पर सघन दाढ़ी-मूँछें हैं, फिर भी उसके शरीर की कोमलता स्पष्ट ज्ञात होती है। उसकी आँखो में मधुरता भी है और तेजस्विता भी।)

ज्वाला—जो व्यक्ति अब संसार मे नही है, उसकी निन्दा करना मेवाड़ के विवेकशील राजकुमारो को शोभा नही देता।

सूरजमल—क्या कहा ? पिताजी अब संसार में नहीं हैं ?

ज्वाला—हाँ, मेवाड़ के महाराणा बनने का दुःस्वप्न देखने वाले, पिता की हत्या करने के पश्चात् पुत्री को विदेशी सत्ताधीश की अंक-शायिनी बनाने का नीच संकल्प करने वाले, महाराणा ऊदाजी रणभूमि मे अनन्त निद्रा मे लीन हैं।

(ज्वाला की आँखों में एक-दो बिन्दु आँसुओं के झलक आते हैं।)

संग्रामसिंह—सैनिक, तुम्हारे नयनो के आकाश मे सजल सावन क्यों घिर आया ?

पृथ्वीराज—जिस व्यक्ति का नाम लेना भी पाप है उसकी मृत्यु पर तुम अश्रु ढालते हो राजपूत !

ज्वाला—रक्त का सम्बन्ध ऐसा ही है राजकुमार ! जो अपना है, वह चाहे कितना ही बुरा हो, उसके सदा के लिये बिदा होने पर हृदय का रक्त आँसू बनकर बह जाना चाहता है।

पृथ्वीराज—तुम्हारा ऊदाजी से क्या सम्बन्ध है ?

(ज्वाला अपनी नकली दाढ़ी-मूँछे दूर करती है।)

ज्वाला—उन्होने मुझे जन्म दिया था।

सूरजमल—(ज्वाला को गले लगाते हुए) अरी, तू है ज्वाला ! अद्भुत वेश बनाया है। सहोदर भी तुझे पहचान न पाया।

(सूरजमल की आंखो से भी आँसू बह पड़ते हैं।)

संग्रामसिंह—बहन, तुम्हे अपने भाइयों के बल-विक्रम पर विश्वास नही था क्या, जो तुम अपनी कोमल काया को रण-ज्वाला में झोंकने के लिये चली आई ?

(इस बीच सूरजमल और ज्वाला कुछ प्रकृतिस्थ होते हैं एवं आलिंगन से अलग होते हैं।)

ज्वाला—मुझे अपने वीर भाइयो पर पूर्ण विश्वास है, तभी तो मै दिल्ली मे शत्रुओ के बीच सतत रहकर भी जीवित रह सकी। जहाँ शत्रु सहस्र हाथो से सतीत्व के कोमल सुमन को मसल डालना चाहता था, वहाँ मेवाड़ की राजकुमारी के रोम का भी स्पर्श कर सकना किसी विदेशी के लिये सम्भव हो नही सकता था। दादा भाई सग्रामसिंह जी, दुर्भाग्य से यदि ज्वाला शत्रु के पजे मे पड़ती, तो निश्चय समझो क्षत्राणी अपनी छुरी से कामी के कलेजे का खून पीकर, अपना भी बलिदान दे देती। दिल्लीपति से युद्ध करने में इतने मेवाड़ी मस्तको को लुटवाने की आवश्यकता ही नही पडती।

संग्रामसिंह—यह तो ठीक है, किन्तु मेवाड का पुरुषार्थ ऐसी परिस्थिति को उचित नही समझता। बहन, राम ने लका पर चढ़ाई क्यो की थी ? क्या राम को सीता के सति-बल पर विश्वास नही था ?

क्या सीता अपने प्राणों की बलि देकर सहस्रों नर-मुण्डों का बलिदान रोक नही सकती थी ? यदि वह ऐसा करती तो इसका अर्थ होता उसे राम के पुरुषार्थ पर विश्वास न था। वह जानती थी, भारतीय सस्कृति नारी के सतीत्व और सम्मान की रक्षा के लिये लाखों-करोड़ो नर-नाहरों की बलि देने को प्रस्तुत है। रावण द्वारा सीता का हरण भारतीय परम्परा, सभ्यता और संस्कृति को चुनौती था।

सूरजमल—और दिल्लीपति की मेवाड़ की राजकुमारी से विवाह करने की दुरभिलाषा सम्पूर्ण राजपूत जाति का अपमान है और इसीलिये पुत्र ने बहन के सम्मान की रक्षा के लिये पिता के विरुद्ध शस्त्र धारण किये।

ज्वाला—और इसीलिये बेटी भी अपने पिता के मरण का कारण बन गई।

संग्रामसिंह—किन्तु अब तुम्हें उस पर पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये। कर्तव्य का पथ अनेक दुविधाओ से भरा हुआ रहता है। जो आदर्श पर दृढ है वे ममता, माया, नाते और सम्बन्धो को पाँव की बेडियाँ नही बनने देते। एक दिन अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने स्वजनो और गुरुजनो को विपक्ष मे खड़ा देखकर कहा था— हे कृष्ण, मै इन्हें नही मारना चाहता, भले ही ये मुझे मार डाले। इस पृथ्वी के लिये तो क्या त्रैलोक के राज्य के लिये भी मै इन्हें नही मारना चाहता। कुल के क्षय होने से कुल की सनातन परम्पराएँ नष्ट हो जाती है। धर्म के नाश होने से पाप का अधिकार हो जाता है।

सूरजमल—मेरी सम्मति में अर्जुन के कथन मे सत्य था।

सग्रामसिह—नही, मोहवश हम असत्य को ही सत्य समझ लेते है। कृष्ण ने गीता मे देह को असत्य और आत्मा को सत्य बताते हुए ससार

के सारे नाते झूठे सिद्ध किये हैं। समर-भूमि मे कर्तव्य की प्रेरणा से युद्ध करते समय हमें इन सभी नातो के ऊपर उठना होगा।

सूरजमल—हम साधारण प्राणी माया-ममता के ऊपर उठ जावे तो कृष्ण की भाँति देवता ही बन जावे। कुछ भी हो, रक्त का सम्बन्ध प्राणो मे व्यथा का तूफान उठाता ही है। एक क्षण पहले मै पिता पर घातक प्रहार करने मे सकोच नही करता, किन्तु अब जब वह संसार मे नही हैं, उनके साथ उनके पाप भी चले गये। अब हमे उनकी मिट्टी का सम्मान करना चाहिये।

सग्रामसिह—अवश्य! ऊदाजी की अन्त्येष्टिक्रिया मेवाड़ के राजवंश के प्रतिष्ठित व्यक्तियो के समान ही होनी चाहिये। उनके शव को प्राप्त करने के लिये हमे शत्रुदल की पूर्ण पराजय की प्रतीक्षा करनी होगी।

ज्वाला—शत्रुदल के पाँव उखड चुके है, किन्तु हमे पिताजी का शव प्राप्त करने के लिये शत्रु-सेना से रणभूमि के रिक्त होने की प्रतीक्षा नही करनी होगी, मै पिताजी के शव को अपने घोडे पर लाद लाई हूँ। आओ मेरे साथ।

(सब का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ दुर्ग के राजमहल में महाराणा रायमल की छोटी रानी शृङ्गारदेवी का शयन-कक्ष । कक्ष में बहुमूल्य पर्यंक पर सुन्दर सेज बिछी हुई है। विश्राम करने के समय के उपयुक्त वस्त्रों में महाराणा रायमल पर्यंक पर विराजमान हैं। कक्ष के एक कोने में वीणा रखी हुई है, जो इस बात का प्रमाण है कि महारानी को संगीत से प्रेम है। कमरे की बिछात और सजावट विलासी भावनाओं को प्रदर्शित करने वाली है । शृङ्गारदेवी का प्रवेश। वह रूप-लावण्य की भंडार है एवं वस्त्रालंकार की मनोरमता ने उसे और भी अधिक आकर्षक बना रखा है। यौवन-काल पार कर लेने पर भी उसकी मोहकता में अन्तर नहीं आया है । उसके हाथ में एक स्वर्णपात्र है, जिसमें कुसुम्बा भरा हुआ है।)

शृंगारदेवी—(महाराणा के अधरों से पात्र लगाते हुए) अपने अमृत भरे अधरों से पात्र की प्यास बुझाइये । अपने हाथो से बनाकर लाई हूँ।

रायमल—(सरस दृष्टि से शृङ्गारदेवी को देखते हुए) कुसुम्बा की क्या आवश्यकता है शृगारदेवी ! सुन्दरी नारी की सरस दृष्टि कुसुम्बा से भी अधिक मादक है । दृष्टि ही क्या, तुम्हारा तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व अगूरी शराब है।

(रायमल कुसुम्बा का एक घूंट शृङ्गारदेवी के हाथों से पीकर पात्र अपने हाथ में ले लेते हैं।)

शृंगारदेवी—ऐसा है तो महाराणा जी, मेरी काया को अफीम की भाँति गुलाबजल में घोल डालिए और इसका कुसुम्बा बना डालिये। मेवाड़ के सामन्तो का कम से कम एक दिन का मनोरजन तो हो ही जायेगा और मुझे इस बात की तृप्ति होगी कि मेरी काया

महाराणाजी को वास्तविक रूप मे प्रसन्न कर सकी ।

रायमल–(कुसुम्बा का घूंट पीते हुए) किन्तु श्रृगारदेवी केवल मेवाड़ के महाराणा के लिये है ।

श्रृगारदेवी–किन्तु मेवाड के महाराणा पर श्रृंगारदेवी का एकाधिपत्य तो है नही । श्रृगारदेवी की अपेक्षा मेवाड के सामन्तो का महाराणाजी पर अधिक अधिकार है । श्रृगारदेवी क्या है ? महाराणा जी की छोटी रानी मात्र । पटरानी तो झाला रानी है और उनके पुत्र सग्रामसिंह और पृथ्वीराज मेवाड़ के महाराणा एव मेवाडवासियो की आँखो के तारे है । श्रृगारदेवी का पुत्र जयमल तो सबकी उपेक्षा का पात्र है ।

रायमल–(कुसुम्बा का पात्र पास रखी एक चौकी पर रखते हुए) तुम बहुत सुन्दर हो, जैसे सर्पणी और उसी की भाँति ज़हरीली भी ।

श्रृगारदेवी–(महाराणा के अति समीप बैठते हुए) तो सर्पणी को महाराणा जी कभी-कभी गले का हार क्यो बना लेते है ?

रायमल–शकर के गले मे सर्पो का होना स्वाभाविक है ।

श्रृगारदेवी–तो आप शकर की भाँति अनुरागविहीन है ।

रायमल–अनुरागविहीन कौन हो सकता है ? कौन कहता है कि शकर अनुरागविहीन थे । सती की लाश को उठाए हुए उन्मत्त होकर तीनो लोको मे घूमने वाले शकर को वीतराग कहना असत्य की पराकाष्ठा है । सच बात तो यह है कि नारी पुरुष की निर्बलता है । उसकी सम्पूर्ण दृढता नारी के चरणों मे पानी होकर बह जाती है । आदर्श-प्रियता, वीरता और विवेक, तप और संयम नारी के एक सकेत पर सुधि भूल जाते है । विश्वामित्र जैसे कठोर दृढव्रती तपस्वी मेनका के मादक सकेतो से उन्मत्त हो गये थे । नारी पुरुषो से क्या नही करा सकती ?

श्रृंगारदेवी–(महाराणा के पास से उठकर कुसुम्बा का पात्र उठाती हुई)

किन्तु महाराणाजी, होश में रहने के लिये नारी के हाथ का दिया हुआ कुसुम्बा भी नही पीना चाहते ? लीजिये, पीजिये ।

(शृङ्गारदेवी पात्र महाराणा रायमल को देती है—महाराणा मुस्कराते हुए एक घूंट पी लेते हैं और फिर पात्र को चौकी पर रखकर खड़े हो जाते हैं और कक्ष में दो-चार कदम इधर-उधर रखते हैं ।)

रायमल—उस दिन, आज से बाईस वर्ष पहले जोधपुर की राजवाटिका मे जोधा जी राठौर की कुमारी की रूप-सुरा का रायमल की आँखो ने जो चोरी-चोरी रस-पान किया था, तब से क्या एक क्षण के लिये भी उसे होश आया है ? पता नही वह प्रकृति की कृपा थी अथवा मुझे अपना बन्दी बनाये रखने के लिये जोधा जी का षड्यन्त्र । कुछ भी हो, परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ का मारवाड पर बन्धन ढीला पड गया ।

शृगारदेवी—अर्थात् मारवाड़ की राजकुमारी और मेवाड के राजकुमार का ग्रन्थि-बन्धन दोनों राज्यो के स्नेह-बन्धनों को छिन्न-भिन्न करने वाला हुआ ।

रायमल—मारवाड सदा ही मेवाड की आज्ञा का अनुगामी रहा है, किन्तु तुम्हारा मुझ पर राज्य होने के कारण उसे अपनी सत्ता को स्वतन्त्र समझने की हिम्मत होने लगी है । किन्तु छोडो इस नीरस प्रसग को। प्रीति का मनोहर सगीत राजनीति के नीरस नाद मे क्यो परिणत हो ?

शृगारदेवी—किन्तु, यही तो स्वाभाविक है, महाराणा जी । राजपूत के जीवन में प्रीति तो मरुस्थल में कही-कही दिखाई देने वाले थोड़े-से छोटे-छोटे हरियाले स्थानों की भाँति कभी-कभी दिखाई पड जाती है । अन्यथा उसका सम्पूर्ण जीवन राज-काज के प्रज्वलित बालू के मैदान मे से ही गुजरता है ।

रायमल—किन्तु महारानीजी, सावन के अन्धे को हरा ही हरा दिखाई

देता है। तुम्हारा रूप मेरे जीवन का सावन है, जिसमे मेरे विवेक की आँखें ज्योति खो बैठी है। मुझे सिवा तुम्हारे रूप के कुछ दिखाई नही देता। शृगारदेवी की इच्छा आज मेवाड की राजनीति है।

शृंगारदेवी–(दीर्घ निश्वास लेकर) ओह, कही यह बात सत्य होती ?

रायमल–(दीर्घ निश्वास लेकर) कही यह बात असत्य होती तो आज रायमल सग्रामसिह और पृथ्वीराज के अनाडी हाथो मे मेवाड की सेना का सचालन न छोडता। आज दिल्लीपति की सेना से लोहा लेने के लिये मेवाड का महाराणा सबसे आगे दिखाई देता।

शृगारदेवी–आपको इसका पश्चात्ताप क्यो होना चाहिये। जब आपके पुत्रो के हाथ मे युद्धभूमि मे तलवार का जौहर दिखाने का पर्याप्त बल-कौशल आ चुका है, तब चिरकाल से समर-भूमि मे पराक्रम दिखाने वाली भुजाओ को विश्राम क्यो नही करना चाहिये।

रायमल–अर्थात् उन्हे नारी के मस्तक का कोमल सिरहाना बनकर पडे रहना चाहिए। महारानी, तुम्हारे मुँह से विश्राम की बात शोभा नही देती, क्योकि तुम क्षत्रिय बाला हो। मेवाड का महाराणा यद्यपि राम, लक्ष्मण और भरत के समान सुयोग्य युवा पुत्रो का पिता है, किन्तु उसे विश्राम का नाम लेने का अधिकार नही है।

शृगारदेवो–महाराजा दशरथ ने भी राम को राज-काज सौप कर विश्राम करना चाहा था।

रायमल–ठीक है, किन्तु उस समय के अयोध्या के राज्य और मेवाड़ के वर्तमान राज्य मे बहुत अन्तर है। ऊदाजी की जलाई हुई ज्वाला मेवाड के गौरव को भस्मसात् करने के लिये अपनी सहस्रो जिह्वाएँ लपलपा रही है। मेवाड़ के गौरव को निगलने के लिये दसो दिशाओ से अगणित अजगर मुँह फैला रहे है। और ओ जादूगरनी नारी, तू मुझे कर्तव्य-पथ से विचलित करना चाहती

है ! हट जा मेरे सामने से !

शृंगारदेवी—(साश्चर्य महाराणा रायमल की ओर देखकर) महाराणाजी, सहसा क्या हो गया आपको ! अभी तो आप कहते थे, शृंगारदेवी की इच्छा ही मेवाड़ की राजनीति है।

रायमल—(शान्त स्वर में) हाँ, यही तो महाराणा की बेबसी है। तुमने मुझे अपने आकर्षण के कारागार मे बन्द कर रखा है। मे बंदी पछी की तरह तड़पता हूँ, सीखचो पर चोचे मारता हूँ, किन्तु मुक्ति नही पा सकता। तुम नित्य नये प्याले पिला कर मेरी रसिकता को यौवन देती हो और राजपूती को जीर्णता।

शृंगारदेवी—महाराणाजी, (महाराणा के सामने जाकर अपने हाथ से उनके मुख को अपनी ओर करके) इधर देखो, मुझे समझो। मै भी राठौरों की पुत्री हूँ, जिन हाथों से महाराणा जी के लिये कुसुम्बा बनाती हूँ उनमें शस्त्र पकड़ने की क्षमता भी रखती हूँ। मेरा दुर्भाग्य है कि महाराणा जी ने मेरे शरीर में, मेरे प्राणो में बसने वाले क्षत्रिय तेज को देखा ही नही। कभी उसे उत्तेजित ही नही किया। आपने देखा केवल दुग्ध-धवल चर्म, आपने देखी केवल मेरी लालसा से भरी हुई आँखे, नही देखा वह दुर्दमनीय साहस जो राजपूतानी के जीवन की साँस है, नही देखी वह ज्वाला जो त्रिलोचन के तीसरे नेत्र के महाअनल को भी सहमा दे।

रायमल—सचमुच तुम भयानक नारी हो शृंगारदेवी !

शृंगारदेवी—महाराणाजी, आप मेरी स्तुति कर रहे हैं अथवा निन्दा।

रायमल—क्या तुम समझ नही सकी ?

शृंगारदेवी—नही तो, और यह भी नही समझ सकी कि महाराणा चाहते क्या हैं, मेरा कौन-सा रूप मेरे देवता को प्रिय है।

रायमल—चाँदनी रात मे झरने वाले झरने-सा फेनोज्वल तुम्हारा यौवन, बादलो मे चमकने वाली बिजली-सा जगमगाता हुआ

सौदर्य, रणभूमि मे चमकने वाली तलवार की धार-सी तुम्हारी चितवन। (शृङ्गारदेवी की भुजाओ को पकड़कर हिलाते हुए) यह साँप के निचले अंग की भाँति चमकदार चिकनी गोल-गोल भुजाये। भुजगिनी, मुझे तू उसी रूप मे सुहाती है।

(रायमल शृङ्गारदेवी की भुजाओ को छोड़कर कुसुम्बा का पात्र उठाकर पीने के लिये मुँह तक लाते हैं, किन्तु शृङ्गारदेवी उन्हे रोकती है।)

शृंगारदेवी—बस महाराणा। सम्भवत. आज कुसुम्बा कुछ गहरा हो गया है।

रायमल-(शृङ्गारदेवी के रोकने पर भी शेष कुसुम्बा पीकर पात्र को फेंक देते हैं।) रायमल ऐसे बीसियो पात्र एक ही समय में पी सकता है और तुम्हारे जहरीले हाथो के दिए हुए पात्रो से तो वह युग-युग तक पीने के लिये लालायित रहेगा।

शृंगारदेवी—पी लेना सरल है, पीकर होश मे रहना कठिन।

रायमल—जो होश मे रहता है वह पीता ही नही। होश क्या है, इसे जानने के लिये भी कभी-कभी बेहोश होना आवश्यक है। होश मे रहने के लिये कौन पीता है? नशा तो बेहोश होने के लिये ही किया जाता है। सच पूछो तो वेहोशी मे जो बात कही जाती है वही वास्तविकता के निकट होती है। होश मे तो मनुष्य जो बात करता है उसमे कृत्रिमता अधिक होती है।

शृगारदेवी—किन्तु विचारो का तारतम्य स्थिर रखने के लिए होश मे रहना आवश्यक है।

रायमल—तारतम्य स्वयं एक कृत्रिमता है। तुमने अरावली की पर्वत-माला को देखा है, कैसी ऊँची-नीची है वे। कही खड्ड है, कही ऊँचे शिखर, कही सघन वन, तो कही सपाट चौगान, कितनी विषमता है उनमे, और किसी प्रकार का नियम और तारतम्य नही है। जीवन ऐसा ही होना चाहिए। रणभूमि और सुमन-सेज

दोनो ही जीवन के दो यथार्थ पहलू है।

शृंगारदेवी—आप ठीक कहते है महाराणा जो, उत्तेजित घड़ियो मे रणभूमि मे शौर्य दिखाना पर्वत के शिखर पर चढने के समान है और मादक घड़ियो मे कोमल हाथो से प्रीति-सुरा का पान करना मानो खड्ड मे नीचे उतरना है। सौन्दर्य-प्रेमी आंखो को ऊँचाई और गहराई दोनों ही सुन्दर जान पडती हैं। महाराणाजी को जीवन के किसी भी पहलू को हीन नही समझना चाहिये।

(शृङ्गारदेवी हाथ पकड़कर रायमल को पर्यंक पर बैठा देती है, फिर वीणा उठाकर लाती है और महाराणा के पास बैठकर बजाना प्रारम्भ करती है।)

शृगारदेवी—आप विश्राम कीजिये मै वीणा बजाती हूँ। आपके उत्ते-जित मस्तिष्क को सगीत की शीतल धारा प्रलेपन की भाँति शान्त करेगी।

(शृङ्गारदेवी वीणा बजाने में तन्मय हो जाती है—महा-राणा रायमल लेटकर वीणा-वादन का आनन्द लेने का यत्न करते हैं। इसी समय नेपथ्य में नगाडों और भेरियों की आवाजें होती हैं। महाराणा सहसा उठकर खडे हो जाते हैं एवं बाहर जाने लगते हैं। शृङ्गारदेवी वीणा को पटककर महाराणा की तरफ बढ़ती है।)

रायमल—(जाते-जाते) मेवाड की जय-पताका फहराते हुए मेरे वीर पुत्र लौट आए है, मै उनका स्वागत करूँगा।

(प्रस्थान)

शृगारदेवो—किन्तु महाराणा जी क्या आप अकेले ही अपने विजयी पुत्रो का स्वागत करेगे। मै भी आपके पुत्रो की, नही-नही अपने पुत्रों की, आरती उतारूँगी। कितना अच्छा होता, आज सग्राम-सिह और पृथ्वीराज के साथ जयमल भी होता तो क्षत्राणी माँ का हृदय फूला न समाता।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाॅं दृश्य

(स्थान—शिलाखंडो से परिपूर्ण सरिता-तट। समय रात्रि का द्वितीय प्रहर। चांदनी रात। कुमारी तारा एक शिला पर बैठी हुई गीत गा रही है। सरिता की धारा कुछ दूर है, अतः दर्शकों की दृष्टि से ओझल है। इस स्थान के शिला-खण्डों से ही अनुमान होता है कि निकट ही सरिता है। तारा को तारुण्य एवं सौन्दर्य की अनुपम निधि प्रकृति ने उदारता पूर्वक प्रदान की है। राजपूत बाला के उपयुक्त लम्बा कद, गौर वर्ण, मुख-मण्डल पर मधुर कांति और सुदीर्घ नयनों में मोहकता के साथ तेजस्विता दिखाई देती है। वह शिला-खण्ड पर बैठकर गाती हुई ऐसी जान पड़ती है मानो कोई अप्सरा किसी तपस्वी का तप-भंग करने के लिये अपनी स्वर-लहरी के शर छोड़ रही है। किन्तु उसके सौन्दर्य और स्वरूप के विरुद्ध उसकी कमर में तलवार भी बधी हुई है।)

तारा—(गीत)

रहा है हृदय यह अकेला अकेला,
किसी ने नही प्रीति का खेल खेला।
रहा है कुटी मे सदा ही अन्धेरा,
सतत शून्यता का रहा, हाय घेरा।
जगत मे न कोई बना मित्र मेरा।
किसी की हँसी ने किया कब उजेला ?
रहा है हृदय यह अकेला अकेला।
किसी ने नही प्रीति का खेल खेला।
प्रतीक्षा किसी की विकल कर रही है।
हृदय मे विपुल वेदना भर रही है।
विकल लोचनो को सजल कर रही है।

वियोगी हृदय ने कठिन ताप झेला।
रहा है हृदय यह अकेला अकेला।
किसी ने नही प्रीति का खेल खेला।
न जाने किसी ने किधर से पुकारा।
किसी ने किया है कही से इशारा!
उगा है नया ही कही एक तारा।
अरे आ गई क्या मिलन की सुबेला?
रहा है हृदय यह अकेला अकेला।
किसी ने नही प्रीति का खेल खेला।

(तारा जिस समय 'प्रतीक्षा किसी की विकल कर रही है' पंक्ति गा रही है उसी समय पृथ्वीराज पीछे से प्रवेश करता है और गीत पर मुग्ध होकर चुपचाप खड़ा रहता है। तारा का ध्यान उसकी तरफ नही जाता और वह तन्मय होकर गाती रहती है।)

पृथ्वीराज–(जब तारा का गीत समाप्त होता है।) अद्भुत! अपूर्व!! मृदुतम!!! स्वर्ग की अप्सरा ने धरती पर अवतार लिया है।

(तारा खड़ी होती है। मुड़कर पृथ्वीराज की तरफ देखती है और म्यान से तलवार निकालती है।)

तारा–दुष्ट तू कौन है?

पृथ्वीराज–कमल से भी कोमल हाथो मे यह सहार का निष्ठुर शस्त्र क्यों पकडती हो, बाले! दुष्ट पुरुष की शालीनता पर अविश्वास मत करो। मै राजपूत हूँ, तुम भी राजपूत बाला जान पडती हो। राजपूत बाला किसी भी कारण से किसी पुरुष से सहसा भयभीत नही होती।

तारा–निश्चय ही, राजपूतनी कभी भयभीत नही होती, किन्तु पुरुष की लम्पटता से रक्षा करने के लिये तत्पर होने को भयभीत होना नही कहते अजनबी राजपूत!

पृथ्वीराज—अजनबी राजपूत को बिना जाने-बूझे लम्पट कह देना अनुचित है। यह ठीक है कि एकान्त मे इस सरिता के तट पर एकाकी तरुणी के निकट किसी तरुण का इस प्रकार आ जाना असमंजस मे डालने वाला है, किन्तु इसमे इस अजनबी राजपूत का कोई अपराध नही। तुम जानती हो, नारी के मधुर स्वर मे कितना आकर्षण होता है, मनुष्य तो क्या जगल के हिरण भी सगीत को सुनकर खिचें चले आते है।

तारा—किन्तु मनुष्य मृग की भाँति अबोध नही होता और नारी के प्रति उसकी भावना निर्दोष नही रह पाती। तुम्हारा यहाँ इस प्रकार आना निश्चय ही अपराध है और मुझे किसी पुरुष का ऐसा दुस्साहस सह्य नही हो सकता। मै तुम्हे दण्ड दूँगी।

पृथ्वीराज—बहुत विश्वास है तुम्हे अपनी तलवार का। हो सकता है तुमने शस्त्र-साधना मे प्रवीणता प्राप्त की हो, किन्तु फिर भी तुम नारी हो। मेवाड के राजकुमार पृथ्वीराज की तलवार से टकराकर तुम्हारी तलवार टुकडे-टुकड़े हो जायगी।

तारा—(साश्चर्य) तो आप मेवाड के राजकुमार पृथ्वीराज है, जिनके दुर्दमनीय साहस की कहानियाँ मेवाड़ के घर-घर मे चर्चा का विषय बन रही है।

पृथ्वीराज—हाँ वही कुख्यात पृथ्वीराज तुम्हारे सामने नतमस्तक खड़ा है, जिसकी भुजाओ को एक क्षण विश्राम करना सह्य नही है, जो अभी-अभी दिल्लीपति की विशाल वाहिनी का मद-मर्दन कर आया है, किन्तु फिर किसी नयी विपत्ति की तलाश मे है और राजमहल मे मन न लगने से वन के हिसक पशुओ का आखेट करता हुआ यहाँ आ पहुँचा है। किन्तु बाले, तुम कौन हो ? क्यो इस निर्जन सरिता-तट पर विरह की रागिनी छेड रही हो ? तुम्हे जरा भी भय नही कि सरिता-तट पर रात के समय सिह जैसे

हिंसक प्राणी पानी पीने आते है और सिंह से भी भयानक पुरुष भी कभी-कभी आ पहुँचते है।

तारा--राजकुमार, तुम्हारी तरह इस राजपूत बाला को भी विपत्तियो को आमन्त्रित करने मे आनन्द आता है। सकट मेरा चिर सहचर है। तुम मेवाड़ के राजकुमार हो, हिन्दुओ के सूर्य कहाने वाले महाराणा के पुत्र, किन्तु मै भी कहने के लिये राजकुमारी हूँ। एक छोटे-से राज्य के अधिपति की पुत्री हूँ।

पृथ्वीराज--किस राज्य के अधिपति की ?

तारा--टोडा दुर्ग के स्वामी राव सूरतान को आप जानते हो ?

पृथ्वीराज--उनके दर्शन पाने का अवसर तो नही मिला, किन्तु नाम सुना है, यह भी सुना है कि लालपठान ने उनसे टोडा दुर्ग छीन लिया है।

तारा--हाँ राजकुमार ! आपने ठीक ही सुना है। अब हम इस वन-प्रदेश में रहकर अपनी बपौती को पुन: प्राप्त करने के लिये साधना कर रहे है। पिताजी को इस बात का खेद है कि उनके कोई पुत्र नही है, जो इस सघर्ष मे उनसे कधे से कंधा मिलाकर शत्रु से लोहा लेने मे साथ देता। इसलिये उनकी पुत्री तारा ने शस्त्रो की साधना की है, घोड़े की पीठ पर बैठकर दुर्गम स्थानो की इसने सैर की है, धनुर्विद्या का अभ्यास किया है।

पृथ्वीराज--सुना है तुम्हारे मोहक रूप की ख्याति ही लालपठान को टोड़ा दुर्ग मे खीच लाई। उनके प्रस्ताव की अवहेलना ही राव सूरतान की सारी विपत्तियो का कारण है।

तारा--हाँ राजकुमार ! नारी का सौन्दर्य कभी-कभी स्वजनो के लिये अभिशाप बन जाता है। मेवाड़ का इतिहास भी तो इसका साक्षी है। पद्मिनी ने चित्तौड़ का शाका करवाया, उसी प्रकार आज यह तारा अपने पिता के सकट का कारण बनी हुई है; किन्तु आप

निश्चय जानिये, मै एक दिन उस लपट लालपठान से अपना दुर्ग छीन कर रहूँगी और उसकी छाती अपनी छुरी से विदीर्ण करूँगी।

पृथ्वीराज--तुम्हारे प्रण और साहस की मै प्रशंसा करता हूँ। मनुष्य मे सकल्प की दृढता और साहस हो तो साधनो की कमी उसके मार्ग की बाधा नही बन सकती । निश्चय ही तुम्हारा सकल्प पूरा होगा । किन्तु तुम नारी हो, बिना पुरुष के सहयोग के वैरी से प्रतिशोध न ले सकोगी । प्रकृति ने आज अचानक अनायास दो प्राणियो को इस निर्जन स्थान पर एक दूसरे के सामने खड़ा कर दिया है । हमारे मिलन पर आकाश मे चाँद मुस्करा रहा है, सरिता गीत गा रही है । लाओ अपना यह तलवार वाला हाथ, मेरे हाथ मे दो ।

(तारा का हाथ पकड़ लेता है। तारा गर्दन नीचे झुकाती है।)

पृथ्वीराज–पृथ्वीराज के भयकर बाढ के समान तटहीन जीवन को मानो किनारा मिल गया। कितनी ही सुकुमारियां रूप और यौवन की मादक प्यालियाँ लेकर इसे बेहोश करने आई, किन्तु विफल रही । बाढ को किसने बाहुओ मे बाँधा है । किन्तु तुम धरती के समान विशाल हो, तुम्हारा छोर मै नही पा सकता। पृथ्वीराज के जीवन मे नारी को कोई स्थान आज तक प्राप्त नही हुआ । वह तो रात्रि में भी अपनी तलवार को ही वक्ष से लगाकर सोता रहा है । किन्तु आज प्रथम बार उसने जाना कि नारी के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है ।

(तारा पृथ्वीराज के हाथ से अपना हाथ अलग कर लेती है। पृथ्वीराज विस्मय से तारा की तरफ देखता है।)

तारा–राजकुमार, वीर, साहसी और सत् पुरुष का अपमान करना मै पाप समझती हूँ, फिर भी मुझे कहना पड़ता है कि हमारा यह

आकस्मिक मिलन नदी-नाव-सयोग के अतिरिक्त कुछ नही । हमारे मिलन-मार्ग में अभी लालपठान का अस्तित्व चट्टान की तरह अड़ा हुआ है ।

पृथ्वीराज—उस चट्टान को पृथ्वीराज चकनाचूर कर देगा।

तारा—किन्तु जिस मस्तक मे तारा को प्राप्त करने का कुविचार हुआ था उसे तारा अपनी तलवार से काटना चाहती है ।

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज उसे बाँधकर अपनी प्रियतमा के चरणो में डाल देगा। तुम्हारा जी चाहे तो उसकी अपवित्र काया के टुकडे-टुकड़े कर डालना ।

तारा—तारा राजपूत बाला है, कसाई नही । पराजित और असहाय शत्रु पर वह प्रहार नही करेगी । युद्ध-भूमि मे उससे लोहा लेगी। सिंह-वाहिनी चंडी के समान रिपु-दल का संहार करेगी । वह विजय-दुदुभी बजाती हुई टोडा दुर्ग मे प्रवेश करेगी और पिताजी की इस व्यथा को दूर करेगी कि वह पुत्रहीन है ।

पृथ्वीराज—धन्य हो तारे, तुम सचमुच ही दुर्गा हो । तुम्हारे इस विकट अनुष्ठान मे पृथ्वीराज तुम्हारा अनुचर बनकर साथ देगा । ससार की कोई शक्ति अब लालपठान की रक्षा नही कर सकती ।

तारा—मुझे विश्वास है राजकुमार, हमारी साधना सफल होगी, किन्तु कार्य सरल नही है। टोड़ा दुर्ग छोटा होते हुए भी सुदृढ और दुर्गम है । लालपठान के पास सुशिक्षित एव सुसचालित सेना है। मालवा और गुजरात के सुलतान उसके सहायक है ।

पृथ्वीराज—किन्तु मेवाड़ की शक्ति ··

तारा—(पृथ्वीराज को वाक्य पूरा न करने देकर) मेवाड़ अभी-अभी दिल्ली-पति से सघर्ष ले चुका है । अभी तो मेवाड़ी सैनिकों के घाव भी नही भर पाए होगे । उन्हे फिर नये संघर्ष की ज्वाला में झोक देना उचित नही होगा । राव सूरतान और लालपठान का सघर्ष

मेवाड और मालवा-गुजरात के युद्ध मे परिणित नही होने देना चाहिये। पिताजी ने निराशा की घड़ियो मे महाराणाजी की शरण मे जाने की इच्छा प्रकट की भी थी, किन्तु मैने ही उन्हें रोका है।

पृथ्वीराज–मेवाड के हित का इतना ध्यान है तुम्हे ?

तारा–क्यो न हो, मेवाड़ भारत के भाग्याकाश का रवि है। आये दिन विदेशी शक्तियो का राहु उसे ग्रसने का यत्न करता है, किन्तु अन्त मे उसके तेज के सम्मुख ठहर नही पाता। तारा सीसोदिया राजवश के गौरव-रवि के खग्रास का कारण नही बनेगी।

पृथ्वीराज–जो तुम्हारी इच्छा, तारा, मेवाड की सेना को तुम स्वीकार न करो, किन्तु पृथ्वीराज को अपनी सेना का एक सैनिक समझ-कर तो साथ लोगी। तारा रूपी दुर्गा के साथ पृथ्वीराज शकर की भाँति ताण्डव करना चाहता है।

तारा–ताण्डव का समय आने दो राजकुमार, आप मेरे दाहिने हाथ पर सहार का खेल खेलोगे तो मैं भी सहस्र गुणा बल अपने प्राणों मे अनुभव करूँगी, किन्तु मेरी इच्छा है कि हमारे इस प्रलयकर खेल का न तो मेरे पिताजी को पता चले न महाराणा जी को।

पृथ्वीराज–तुम्हारे आदेश का पालन होगा। किन्तु एक प्रार्थना मेरी है कि इस प्रकार जगलो मे भटकने के वजाय राव सूरतान चित्तौड़ के राजमहल का आतिथ्य स्वीकार करे।

तारा–राव सूरतान को आमन्त्रित कर रहे हो, तारा को नही ? (मुस्कराती हुई)

पृथ्वीराज–जिसने मेरे प्राणो मे घर बसा लिया, उसे क्या आमंत्रण की प्रीतक्षा करनी होगी ?

(ऐसा कहते हुए पृथ्वीराज तारा का हाथ पकड़ लेता है।)

तारा–(हाथ छुड़ाते हुए) नही राजकुमार, प्रीति की इस गगा को अभी

शंकर की जटाओं में उलझी रहने दो। जब समय आयेगा वह अवतरित होगी। चलो, पास ही हमारी कुटी है, वहाँ चलकर पिताजी को स्वय ही चित्तौड चलने का निमन्त्रण दो।

पृथ्वीराज–किन्तु अब तो तुम मेवाड का आतिथ्य ग्रहण करने मे उनका विरोध नही करोगी?

तारा–नही।

पृथ्वीराज–तो चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ दुर्ग का एक पथ। समय—दिन का तीसरा प्रहर। एक तरफ से सूरजमल विचारमग्न किसी धुन में लवलीन प्रवेश करता है और दूसरी ओर से उत्तेजित दशा में ज्वाला तेज चाल से प्रवेश करती है। ज्वाला इस समय भव्य एवं बहुमूल्य वेश-भूषा में है; जो मेवाड़ की एक राजकुमारी के उपयुक्त है, किन्तु उसकी मनोरम वेश-भूषा से उसके हाव-भाव एवं आँखों से प्रकट होने वाली भावनाओं का मेल नहीं मिलता। किसी उत्तेजना के कारण उसके गौर-वर्ण कपोल एवं सुदीर्घ नेत्र बाल-रवि की भाँति रक्तिम हो उठे हैं। सूरजमल और ज्वाला दो विपरीत दिशाओं से प्रवेश करते हुए अपनी ही भावनाओं में लीन रहने के कारण एक-दूसरे को देख नहीं पाते, और पास आने पर एक प्रकार से टकरा-से जाते हैं। तब दोनों का ध्यान एक-दूसरे की तरफ जाता है और दोनों एक-दूसरे को देखते हैं। दोनों की दृष्टि में प्रश्न-चिह्न-सा अंकित दिखाई देता है।)

सूरजमल—अप्रत्याशित आँधी की भाँति तू कहाँ से चली आ रही है?

ज्वाला—राजमहल से। किन्तु तुम बवडर की भाँति कहाँ जा रहे हो?

सूरजमल—राजमहल को?

ज्वाला—जिस राजमहल को मै मन ही मन अंतिम नमस्कार कर आई हूँ, उसमे अब तुम्हे भी पैर नही रखने चाहिएँ।

सूरजमल—राजमहल पर ऐसा क्रोध क्यो?

ज्वाला—क्योकि राजमहल बहुत ऊँचा हो गया है और उसकी दृष्टि में हम लोगो का अस्तित्व कोई मूल्य नही रखता!

सूरजमल—ऐसा क्यों कहती हो बहन! मुझे राजमहल की ऊँचाई कभी आपत्तिजनक नही जान पड़ी। माँ-बाप अपनी सन्तान से बड़े होते ही है। राजमहल मे हमने जन्म लिया है, उसकी गोद

में हम खेले हैं। पंछियों को भी अपने नीड़ से प्रेम होता है। जब मैं राजमहल के द्वार में प्रवेश करता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि वह अपने वात्सल्यपूर्ण हाथ बढ़ाकर मुझे गोद में उठा लेने को व्याकुल होकर बढ़ा चला आ रहा है।

ज्वाला—दादा भाई, तुम तो स्वप्न-जगत् में विचरण करते हो। मुझे भी राजमहल से कम स्नेह नहीं रहा है, किन्तु कभी शीतल चन्दन भी भयंकर ज्वाला में परिवर्तित हो जाता है। आज चित्तौड़ का राजमहल मुझे तो प्रज्वलित ज्वालामुखी जान पड़ता है, जिसने मेरे तन-मन को झुलसा दिया है।

सूरजमल—क्या राजमहल में किसी ने तेरा अपमान किया है?

ज्वाला—हाँ, जिनके लिये हमने अपने पिता से भी विद्रोह किया, वे आज हमारा उपहास करते हैं। महाराणा रायमल की सुपुत्री आनन्ददेवी ने आज मेरे साथ एक ही थाली में भोजन करने से इन्कार किया है।

सूरजमल—क्यों? गहलोत शाखा का प्रत्येक व्यक्ति, राजकुल का सदस्य अथवा साधारण सैनिक, भोजन करते समय सदा ही समान समझा गया है। एक थाल में भोजन करना हमारी परम्परा रही है। इस परम्परा के विपरीत यह घटना वास्तव में मेवाड़ के दुर्भाग्य की सूचक है; किन्तु मैं पूछता हूँ, महाराणा रायमल की पुत्री आनन्ददेवी ने ऐसा अविवेकपूर्ण कार्य क्यों किया?

ज्वाला—सत्ता का मद किसे नहीं होता? वह मेवाड़ के महाराणा की पुत्री है और सिरोही नरेश की महारानी। ज्वाला क्या है? कभी उसके पिता मेवाड़ के महाराणा थे, किन्तु आज तो वर्तमान महाराणा की अनुकम्पा पर जीवित रहने वाले सूरजमल की बहन मात्र है। आनन्ददेवी को अधिकार है कि वह ज्वाला पर मनमाने काल्पनिक लांछनों की वर्षा करे।

सूरजमल--क्या लाछन लगाया उसने तुझ पर ?

ज्वाला--जो महासती सीता पर किसी दिन एक दुर्बुद्धि और दुर्मुख धोबी ने लगाया था।

सूरजमल--अर्थात् ?

ज्वाला--उसने तीखेपन से कहा, 'दिल्ली के विदेशी और विधर्मी सम्राट के रत्न-खचित स्वर्ण-थालो मे महीनो भोजन करती रहने वाली सौभाग्यशालिनी ज्वाला के साथ भोजन करने का दुस्साहस आनन्ददेवी नहीं कर सकती।'

सूरजमल--हूँ (क्रोध से दांतो से ओठ दबाता है।) निश्चय ही उसने अत्यन्त नीचता का परिचय दिया है।

ज्वाला--सुनते ही मै तो आग-बबूला हो गई। मेरी आँखे अगार-सी लाल हो उठी, किन्तु आनन्ददेवी ने ज्वाला को और भी भड़काने के लिये कहा, 'पद्मिनी के समान रूप-यौवन का आकर्षण लेकर वासना-लोलुप दिल्लीपति के राजमहल मे रहने वाली नारी अपनी पवित्रता का अभिमान नही कर सकती।'

सूरजमल--ऐसा कहकर उसने मेवाड़ पर हमारे कोप को आमन्त्रित किया है। जान पड़ता है कि मेवाड के राजपूत हमे मनुष्य बनकर नही रहने देना चाहते। मुझे तेरे अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये पिशाच बनना पडेगा।

ज्वाला--केवल आनन्ददेवी ने ही नही, राजकुल की प्रत्येक नारी ने ज्वाला का अपमान किया है। वे आनन्ददेवी की बात सुनकर एवं मुझे नागिन की भाँति क्रोध मे भरी हुई देखकर एक साथ ही खिलखिलाकर हँस पड़ी। मेरे प्राणो मे उनकी हँसी की आवाज सहस्रो बाणो की भाँति चुभ रही है। दादा भाई, मुझे एक क्षण के लिये भी चैन नही पडता।

सूरजमल--निश्चय ही तेरा क्रोध स्वाभाविक और उचित है। वैभव,

प्रभुता और सुखो की चाह किस मनुष्य को नही होती, किन्तु कुछ लोग सासारिक सुखो को मनुष्यता से अधिक प्रिय नही समझते। ऐसी ही एक भावना ने ज्वाला को दिल्ली की साम्राज्ञी बनने से रोका था, किन्तु त्याग करने के उपरान्त भी अपने ही स्वजनो से उसे तिरस्कार प्राप्त हो, तो क्यो न उसके प्राणो में महाकाल की ज्वाला प्रज्वलित हो उठे। सूरजमल अपनी बहन के अपमान का पूरा-पूरा बदला लेगा।

ज्वाला—किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस घटना के पीछे केवल ज्वाला का अपमान करने का उद्देश्य नही है, अपितु सूरजमल को भी उत्तेजित करना अभीष्ट है। उन्हे भय है कि किसी दिन सूरजमल को मेवाड के राजमुकुट का मोह हो सकता है, वह संग्रामसिंह, पृथ्वीराज एव जयमल का प्रतिद्वन्द्वी बन सकता है।

सूरजमल—सच पूछा जाय तो मेवाड की राजगद्दी का वास्तविक अधिकारी सूरजमल ही है। स्वर्गीय पिताजी ने चाहे कैसा भी जघन्य अपराध किया हो, किन्तु वे महाराणा कुम्भा के ज्येष्ठ पुत्र थे और वे मेवाड के महाराणा भी रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र सूरजमल को ही मेवाड़ का महाराणा होना चाहिये था।

ज्वाला—और उसे होना ही चाहिये। मुझे अपने अपमान का बदला लेना होता तो मै अपने सामने रखी हुई थाली को ही कृष्ण का सुदर्शन चक्र बनाकर आनन्ददेवी की गर्दन काट डालती। तुम जानते हो, ज्वाला अपने क्रोध पर संयम रखना नहीं जानती, लेकिन स्वाभाव के विपरीत मै बिना रक्तपात किये चुपचाप चली आई। चली आई, क्योकि मै दादा भाई को मेवाड़ के राजसिहासन पर आसीन होते देखना चाहती हूँ।

सूरजमल—बहन, अपने बड़े भाई पर तेरा जो स्नेह है उसका मै आदर करता हूँ। क्रोध से मेरे प्राण भी जल रहे है, किन्तु फिर विवेक-

पूर्वक सोचने से मुझे जाना पडता है कि हमें सयम से काम लेना चाहिये। निश्चय ही न्यायतः मै मेवाड के सिंहासन का अधिकारी हूँ, किन्तु मेवाड के हित मे हमे राजकुल के पारस्परिक स्नेह को कायम रखने का यत्न करना चाहिये।

ज्वाला–इसका अर्थ हुआ कि राजपूत होकर भी हम अपमान वर्दाश्त कर लें।

सूरजमल–नही, अपमान को बर्दाश्त कर सकना मृत्यु की पीडा से भी कठिन होता है, किन्तु अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये महाराणा रायमल से राजमुकुट छीनने का यत्न करना क्या अतीव आवश्यक है ?

ज्वाला–नही तो और दूसरा मार्ग क्या है ?

सूरजमल–ज्वाला, तेरा अपमान सकीर्णहृदया नारियो ने किया है, महाराणा रायमल तो सूरजमल से स्नेहपूर्ण व्यवहार ही करते है। उन्होने दिल्लीपति पर विजय पाने के उपलक्ष्य मे मुझ पर प्रसन्न होकर जागीर भी प्रदान की है।

ज्वाला–हूँ! कुत्ते के आगे टुकडा डालकर उसे शान्त किया जाता है। जागीर देकर तुम्हे छला गया है। मेवाड की सारी भूमि, सम्पूर्ण राज्य-वैभव तुम्हारा है। तुम्हारी वस्तु मे से एक लघु अंश तुमको दान-स्वरूप प्रदान किया गया है। डाकू लोग दानी वनने का पाखड करते है। नही दादा भाई, दान लेना ब्राह्मणो और भिखारियो का काम है। राजपूत के हाथ जब तक तलवार है वह अपनी बपौती को प्राप्त करने के लिये यत्न करता है। मै तुम्हे अकर्मण्य और कायर नही वनने दूंगी।

सूरजमल–ठीक है बहन, तू सूरजमल को पिताजी के पथ पर चलाना चाहती है, किन्तु उतना नीच सूरजमल बन सकेगा, इसमे सन्देह है। फिर भी वह अपने स्वत्व की प्राप्ति के लिये मेवाड के राज-

कुमारों से प्रतिद्वन्द्विता अवश्य करेगा । महाराणा रायमल के पश्चात् संग्रामसिंह, पृथ्वीराज अथवा जयमल तीनो मे से कोई भी राजसिंहासन पर नही बैठ सकेगा । सूरजमल के जीवन का सकल्प यही है ।

(इसी समय संग्रामसिंह और पृथ्वीराज प्रवेश करते हैं । दोनों सशस्त्र हैं और जान पड़ता है जैसे आखेट के लिए प्रस्थान कर रहे हैं । उन्हें देखकर सूरजमल और ज्वाला उनके मार्ग से अलग हट जाते हैं । संग्रामसिंह और पृथ्वीराज परस्पर कुछ विवाद करते हुए आ रहे हैं ।)

पृथ्वीराज—किन्तु दादा भाई, यह सरासर अन्याय है कि बड़ा भाई ही गद्दी का स्वामी बने । राजमुकुट धारण करने की पात्रता तो योग्यता पर निर्भर होनी चाहिये ।

संग्रामसिंह—योग्यता की कोई कसौटी निश्चित करना सरल नही है भैया, इसी कारण संघर्ष को बचाने के लिये नियम बना दिया है कि ज्येष्ठ पुत्र पिता का उत्तराधिकारी हो । शेष भाई उसके सहायक बनकर रहें और ज्येष्ठ भाई को पिता के समान समझे । हमारा हिन्दू समाज इसी विधान को पालता हुआ पारस्परिक विद्वेष से बचता आया है ।

सूरजमल—**(संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के बीच में आकर)** किन्तु इस विधान का क्या सर्वदा पालन होता है ?

संग्रामसिंह—ओह, दादा भाई, आप ! और **(ज्वाला को देखकर)** बहन ज्वाला ! यहाँ क्यो खडे हो दोनों ?

ज्वाला—क्यो, क्या चित्तौड़ दुर्ग के पथो पर भी खडे होने का अधिकार ऊदाजी की सन्तानों को नही है ?

संग्रामसिंह—जान पड़ता है, तुम आज लडने के लिये ही घर से निकली हो । कोई नही मिला तो अपने भाइयों से ही झगडना चाहती

हो ? किसने कहा कि ऊदाजी की सन्तान को मेवाड़ मे किसी प्रकार का कोई अधिकार नही है ? उनके प्रति तो मेवाड़ को कृतज्ञ होना चाहिये। स्वाधीनता की रक्षा के लिये, देश का सम्मान अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये, अपने वश की मर्यादा का मान बढाने के लिये, जो सन्तान अपने पिता से सग्राम कर सकती है, उसको संसार अपने हृदय मे युग-युग तक स्थान देता है । ऐसे व्यक्ति प्रह्लाद की भाँति पूजनीय होते है। उनके उदाहरण मानवता का मार्ग-प्रदर्शन करते है । ज्वाला और सूरजमल ऐसे ही व्यक्ति है । केवल चित्तौड़गढ़ ही नही, अपितु मेवाड की सम्पूर्ण भूमि पर उनका अधिकार है।

सूरजमल–अधिकार है एक प्रजा की भाँति, राजा की भाँति नही।

पृथ्वीराज–राजा तो एक ही होता है ।

ज्वाला–और युवराज ?

पृथ्वीराज–वह भी एक ही हो सकता है।

ज्वाला–किन्तु मेवाड़ का महाराणा कौन होना चाहिये ?

सग्रामसिंह–क्या इस प्रश्न को पुन. उठाने की आवश्यकता है ? सहस्रों मस्तको की वलि देकर अभी-अभी तो इसका समाधान प्राप्त किया है।

ज्वाला–अर्थात् जिसने अधिकार कर लिया वह अधिकारी हुआ। कौरवो ने भी तो छल-बल से पांडवो को अपने राज्य से वचित कर संपूर्ण राज्य को अपने अधिकार मे ले लिया था, तब पाडवो ने अपने सत्व की प्राप्ति के लिये क्यो सग्राम किया था और क्यों भगवान् कृष्ण ने पाडवो का साथ दिया था ?

सग्रामसिंह--किन्तु मेवाड़ मे तो कोई ऐसा प्रसग उपस्थित नही है और मेवाड राजकुल में कोई ऐसा दुरात्मा नही है जो कहे कि विना तलवार द्वारा फैसला हुए सुई की नोक के वरावर भी भूमि देना

असम्भव है।

ज्वाला—दादा भाई, अभी तो यही प्रश्न हल करना है कि मेवाड का महाराणा कौन हो, पितृ-हता ऊदाजी मेवाड के सिहासन पर नही बैठ सकते, इस बात को उनकी सन्तान ने भी स्वीकार किया है, किन्तु इसका यह अर्थ नही है उनकी सन्तान अपने स्वत्व को छोड़ देन के लिये भी तैयार है।

पृथ्वीराज—वह तैयार हो या न हो, स्वर्गीय महाराणा कुम्भा के वीर पुत्र महाराणा रायमल ने अपने वीर पुत्रो की सबल बाहुओं के सहयोग से इस प्रश्न का सदा के लिये समाधान कर दिया है, अब इस पर पुर्नविचार नही हो सकता।

सूरजमल—पृथ्वीराज, यदि तलवार के ही हाथ में न्याय करना है और तलवार ही तर्क है तब तो ऊदाजी के पुत्र के हाथ मे भी तलवार पकडने का बल है। वह भी तलवार के तर्क से मेवाड के राज-सिंहासन पर आसीन होने का दावा कर सकता है।

संग्रामसिंह—अवश्य ही दादा भाई, तलवार का तर्क आपके हाथ मे है और इस तर्क-बल से मेवाड़ की गद्दी पर अधिकार करने का यत्न आप कर सकते है, किन्तु मनुष्यता के नाम पर, भारत की सुरक्षा के हित मे मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि इस भयानक विचार को आप मस्तक से निकाल दीजिये।

पृथ्वीराज—(संग्रामसिह से) नही दादा भाई, यह भयानक विचार एक बार मस्तिष्क मे प्रवेश कर जाता है, तो उसे किसी की तलवार ही निकाल सकती है। ऊदाजी के भाग्य से उनकी सन्तान ने कोई शिक्षा ग्रहण नही की, तो उन्हे भी अपनी तकदीर आजमाने दो। समर-भूमि मे ऊदाजी के पुत्र और महाराणा रायमल के पुत्रो की तलवारों को टकराने दीजिये।

संग्रामसिह—पृथ्वीराज, तुम तो आ बैल मुझे मार वाली कहावत चरि-

तार्थ करते हो। तुमको पृथ्वीराज चौहान की भाँति सतत युद्ध की खोज रहती है। शत्रु न मिले तो स्नेहियो पर ही तुम्हारी तलवार चलना चाहती है। ऐसी तीव्र रण-लालसा का परिणाम क्या होता है ? देश आन्तरिक कलह से जर्जर और विभाजित रहता है। तब कोई विदेशी अपना पाशविक पजा बढाता है और देश को पराधीनता के पाश मे जकड देता है। तुम अपना उत्साह विध्वसक पथ पर अग्रसर होने मे नही, निर्माण-पथ पर चलने मे लगाओ और दादा भाई सूरजमल, आपसे भी मेरा निवेदन है कि प्रत्येक प्रश्न को देश-हित की दृष्टि से देखिये। राज्य-लालसा का आपके हृदय मे जाग्रत होना सर्वथा स्वाभाविक है, क्योकि यह हमारे राजकुल के रक्त मे प्रवाहित है, किन्तु इस लालसा की तृप्ति के लिये तलवार का तर्क देना अनिवार्य नही है। मेवाड़ भूमि को अजस्र रक्त-वर्षा से प्लावित करते रहना उचित नहीं। हम स्नेहपूर्वक इस प्रश्न का भी समाधान कर लेगे।

ज्वाला–आपका अभिप्राय है कि साहूकार चोर से स्नेहपूर्वक कहे, 'ले लो, तुम मेरी सारी सम्पत्ति ले जाओ।'

सग्रामसिह–नहीं बहन, मेरा यह अभिप्राय नही है। स्वत्व और अधिकारो पर डाका डालने वाले मस्तक को धड से प्रथक् करने के लिए बाप्पा रावल के वशजो की तलवार सदा प्रस्तुत रहेगी, किन्तु उन्हें अपने उत्तरदायित्व के सम्बन्ध मे भी सोचना चाहिये। राज्य का स्वामी होना क्या केवल ऐश्वर्य-भोग के लिये है। हम तो अपने देश के प्रहरी मात्र है और महाराणा हम सब के मुखिया है। हम सबको अपने उत्तरदायित्व के पालन मे होड करनी चाहिये, न कि प्रभुता के उपभोग में।

सूरजमल–तुम्हारी इच्छा क्या है संग्रामसिह ?

सग्रामसिह–दादा भाई, भगवान् ताऊजी की आत्मा को शान्ति दे, यदि

वह स्वाभाविक रीति से मेवाड के महाराणा वनते तो मुझे विश्वास है पिताजी उनके दाहिने हाथ बनकर उनका साथ देते, किन्तु अब जब कर्तव्य की पुकार ने उन्हें छुगी धारण करने को विवश कर दिया तो हमे—ऊदाजी के पुत्र सूरजमल को भी—उनकी अर्थात् मेवाड की शक्ति बनकर रहना चाहिये।

ज्वाला—और रायमल जी के पश्चात् सग्रामसिंह मेवाड़ के महाराणा हों, इसे भी चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिये। यही कहना चाहते हो न ?

संग्रामसिंह—नही बहन, सग्रामसिंह के हृदय में अनेक आकाक्षाएँ है, मेवाड का महाराणा-पद उसकी आकाक्षाओं की परिधि नही है। उसके कारण मेवाड मे गृह-कलह का सूत्रपात हो इससे बडा दुर्भाग्य उसके लिये और क्या हो सकता है ? सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय पर विचार करने के पहले हमे मेवाड़ भूमि के हिताहित पर विचार करना है। हत्यारे ऊदाजी के पुत्र के पक्ष मे मेवाड को विदेशियो के चगुल में फँसने से बचाने वाले महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र सग्रामसिंह युवराज-पद का परित्याग करने को प्रस्तुत है।

पृथ्वीराज—किन्तु पृथ्वीराज प्रस्तुत नहीं है। राज्य-सत्ता छोडने की वस्तु नही है। (संग्रामसिंह से) आपके तर्क से काम लेते तो भारत को गृह-कलह से बचाने के लिये पांडु-पुत्रो को कौरवो से अपना राज्य वापिस पाने की अभिलाषा ही नही करनी चाहिये थी। पाडु-पुत्र अधिक विवेकशील थे, अत. त्याग उन्हे ही करना चाहिये था। दादा भाई, पृथ्वीराज का यह प्रण है कि हत्यारे ऊदाजी का पुत्र मेवाड के राजसिंहासन पर नही बैठ सकेगा।

सग्रामसिंह—शान्त भैया, राजपूत के प्रण का कुछ मूल्य होता है, अत क्षणिक उत्तेजना में उसे कोई संकल्प नही करना चाहिये। महा-

भारत काल के और आज के भारत में बहुत अन्तर है। उस समय भारत पर विदेशियो की गृद्धदृष्टि नही लगी थी, उस समय भारतीय परस्पर युद्ध करते हुए भी विदेशियो के मुकाबले मे एक होकर उनसे लोहा लेने को प्रस्तुत थे, किन्तु अब हमारे देश पर कई शताब्दियो से एक के बाद दूसरी विदेशी शक्ति का आक्रमण हो रहा है। हमारा देश छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित है। हममे पारस्परिक कलह चल रहा है और प्रत्येक राज्यवश आन्तरिय कलह मे फँसा हुआ है। हमारा समाज भी जातियों और धर्मो मे बँट गया है। ऐसी स्थिति मे मेवाड़ के राज्यवंश मे परस्पर तलवारो की परीक्षा नही होनी चाहिये।

पृथ्वीराज–इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति हठधर्मी पर आ जावे उसकी बात मानी जावे। नही दादा भाई, पृथ्वीराज तो सुई की नोंक के बराबर भूमि भी हत्यारे ऊदाजी के पुत्र को देने को प्रस्तुत नही है, बल्कि पिताजी ने जो जागीर इन्हे दी है, मुझे तो उस पर भी आपत्ति है।

संग्रामसिह–तो समझना चाहिये कि मेवाड़ के दुर्भाग्य की घड़ियाँ अभी समाप्त नही हुई। हम परस्पर समझौता न कर पावे तो महाराणा जी से ही निर्णय करा ले। (सूरजमल से) क्यो दादा भाई, आपको यह स्वीकार है?

सूरजमल–हाँ।

ज्वाला–नही, अपराधी न्यायकर्त्ता नही हो सकता।

सूरजमल–नही बहन, राजपूत न्याय के आसन पर बैठकर अन्याय नही कर सकता। मै काका जी के न्याय को स्वीकार करूँगा।

पृथ्वीराज–यही सही। किन्तु अब यहाँ समय नष्ट क्यो करे। हम आखेट के लिये निकले थे और यहाँ विवाद में उलझ गये। अगले द्वार पर हमारे अश्व प्रतीक्षा कर रहे है।

संग्रामसिंह–(सूरजमल से) आप भी चले, दादा भाई।

सूरजमल–राजपूत आखेट के आमंत्रण को कभी अस्वीकार नही करता। तुम लोग चलो, मै शीघ्रता से तैयार होकर दुर्ग के मुख्य द्वार पर आ मिलूंगा।

(संग्रामसिंह और पृथ्वीराज का एक ओर तथा सूरजमल व ज्वाला का दूसरी ओर प्रस्थान।)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—भवानी का मंदिर। समय—रात्रि। परदा उठने के पूर्व नेपथ्य में मंदिर के घंटे का निनाद सुनाई देता है, एवं दो व्यक्तियों की सुगम्भीर वाणी में उच्चारित स्तुति सुनाई देती है।)

स्तुति—जय भगवति देवि नमो वरदे।*

जय पापविनाशिनि बहुफलदे।
जय शुंभनिशुंभ कपाल धरे।
प्रणमामि तु देवि नरार्ति हरे।
जय चन्द्रदिवाकर नेत्र धरे।
जय पावकभूषित वक्त्र वरे।
जय भैरवदेहनिलीन परे।
जय अंधकदैत्यविशोष करे।
जय महिषविमर्दिनि शूल करे।
जय लोकसमस्तकपाप हरे।
जय देवि पितामहविष्णुनते।
जय भास्करशक्रशिरोऽवनते।

(परदा उठता है तो भवानी का मन्दिर दिखाई देता है। मंच के मध्य भाग में गर्भगृह का द्वार दिखाई देता है जो खुला हुआ है। द्वार के दोनों ओर गर्भगृह की सामने वाली दीवार चली गई है। मंच के शेष भाग में कुछ स्तम्भ मंडल का आभास देते हैं। गर्भगृह के द्वार के सामने दो स्तम्भों के मध्य छत से लटकता हुआ एक दीर्घकाय घंटा दिखाई देता है, जिसे महाराणा रायमल निनादित कर रहे हैं। द्वार के दोनों ओर दो दीपदानों में दीप प्रज्वलित हैं। द्वार में से चार भुजाओं वाली भवानी की मूर्ति के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं जो सिंह पर आरूढ़ हैं। उनके एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में खड्ग, तीसरे में कटा हुआ मस्तक और चौथे में खप्पर है। गले में मुण्डो की माला है। चरणों के पास एक खप्पर सदृश पात्र रखा है, जिसमें से धूप का धूम उठ रहा है। गर्भगृह में राजयोगी (मन्दिर का पुजारी) आरती करके आरती का पात्र महाराणा रायमल की तरफ बढ़ाता है और वह आरती ग्रहण करते हैं। राजयोगी आरती का पात्र मूर्ति के चरणो के पास रखकर धूप के पात्र में से चुटकी भरकर महाराणा रायमल को देते हैं जिसे वह अपने कपाल से मल लेते हैं।)

महाराणा रायमल—(मूर्ति के हाथ जोड़कर) भगवति भवानी की जय।

राजयोगी—(गर्भगृह से बाहर आकर) आज बिना पूर्वसूचना के महाराणा जी को आने का कष्ट किस कारण करना पड़ा ?

महाराणा रायमल—राजपूतों की इष्टदेवि, प्राणों में नवस्फूर्ति सचारित करने वाली भगवती भवानी के मन्दिर मे आने मे कष्ट कैसा राजयोगी जी ? खड्गपूजा के समारोह के पश्चात् एक बार भी देवि के चरणो में प्रणाम करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका, यही खेद की बात है। जब कभी हृदय और मस्तिष्क मे संघर्ष छिड़ पड़ता है तब प्रकाश और प्रेरणा पाने के लिये यहाँ आना ही पड़ता है।

नमस्कृत होने वाली, देवि, तुम्हारी जय हो।

—महर्षि व्यासकृत भगवती स्तोत्र के तीन श्लोक।

राजयोगी—किन्तु महाराणा जी का सर्वथा एकाकी अकस्मात् आगमन आश्चर्य का कारण अवश्य है।

महाराणा रायमल—किन्तु मै एकाकी तो नही आया ।

राजयोगी—एकाकी नही आये, यह तो ठीक है, क्योकि अन्तर्यामिनी, विश्व-व्यापिनी महाशक्ति अणु-अणु मे व्याप्त होकर प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक प्राणी के साथ रहती है । इस अर्थ मे तो कहा जा सकता है कि महाराणा जी यहाँ अकेले नही आये।

महाराणा रायमल—किन्तु आध्यात्मिक उच्च स्तर पर मै इस समय चर्चा नही कर रहा। आध्यात्मिक वाणी मे बोले तो अखिल विश्व भवानी का मन्दिर है और किसी प्राणी को शक्ति की उपासना करने के लिये किसी विशेप स्थान पर जाने की आवश्यकता नही। किन्तु भौतिक जगत् की परिधि से बाहर न जा सकने वाला प्राणी महाराणा साधारण सासारिक की मोटी बुद्धि से आपसे चर्चा कर रहा है। सचमुच हम चित्तौडगढ से पाँच व्यक्ति साथ चले थे।

राजयोगी—फिर भी केवल चार अगरक्षक लेकर महाराणा का इस भयानक अँधेरी रात मे निर्जन स्थानो मे भ्रमण करना निरापद नही है। अभी मेवाड मे षड्यन्त्रो का जाल समाप्त नही हुआ । काले नाग से भी अधिक जहरीले नर-नाग जहाँ-तहाँ बिलो मे मुँह छिपाए बैठे है। अवसर पाते ही वे फन उठाकर डस लेते है।

महाराणा रायमल—इसे मै जानता हूँ, फिर भी आज मै एक भी अग-रक्षक साथ नही लाया, किन्तु मेरे साथ आने वाले व्यक्ति वेतन-भोगी अगरक्षको की अपेक्षा अधिक सबल और विश्वासपात्र है। वैसे जिस पर भवानी की कृपा का हाथ है, उसे किसी भी षड्-यन्त्र से भयभीत होने की आवश्यकता नही। मेवाड ने सदा ही ऐसे काले नागो की थूथड़ी कुचल डाली है । प्रत्येक विपत्ति ने मेवाड़ में नवजीवन का सचार किया है । मै अधकार मे छिपे

हुए सर्पों को सामने लाना चाहता हूँ और इसीलिये उन्हे अपने पर आक्रमण करने का अवसर देता हूँ।

राजयोगी—जानता हूँ महाराणा जी, संकटों को खोजते फिरना राजपूत का स्वाभाव है और इसी कारण मेवाड़ प्रदेश की चप्पा-चप्पा भूमि रक्त-रंजित हो चुकी है।

महाराणा रायमल—खड्ग-धारिणी, मुण्डमाला-विभूषित, शत्रु के तप्त रक्त से स्नान करने वाली चंडी के अनन्य उपासक राजयोगी को क्या इसका पाश्चात्ताप है ?

राजयोगी—नही राजन्, तनिक भी नही, देश की वीर भावना को चिर-जाग्रत रखने के लिये यदा-कदा मेघों के गर्जन की भाँति शस्त्रो की झंकार सुनाई पड़नी ही चाहिये, और रक्त की वर्षा से भूमि को प्लावित होना ही चाहिये।

महाराणा रायमल—चाहे हम परस्पर अपने स्वजनों का ही मस्तक काटे।

राजयोगी—तलवारों को जंग लगाने की अपेक्षा परस्पर ही तलवारों का टकराना बुरा नही है महाराणा जी ! भारत मे क्षत्रियों के वंशाभिमान एवं व्यक्तिगत आकांक्षाओं ने अनेक बार व्यर्थ ही पृथ्वी को रक्त से रंगा है। अनेक साहसी प्राणों की बलि दे दी है, देश को अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित कर दिया है। निश्चय ही इससे देश की शक्ति क्षीण हुई है, विदेशी आक्रमण-कारियों ने इसका लाभ भी उठाया है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप मे इससे देश का कुछ भला भी हुआ है। क्षत्रियों की तलवार के निरन्तर प्रयोग में रहने से भारत का स्वाभिमान, स्वाधीनता की भावना, आन के लिये मर मिटने की साध, निर्भयता और आक्रमणकारी से लोहा लेने की आकांक्षा जीवित रह सकी है।

महाराणा रायमल—आप गहन अन्धकार में आशा की उज्जवल किरणों का दर्शन करते हैं !

राजयोगी–महाराणा जी, हमारा देश कई शताब्दियो से पारस्परिक कलह मे रत रहने के कारण अपने स्वर्णिम अतीत के गौरव को बहुत कुछ गँवा चुका है, इसमे भी सन्देह नही है। फिर भी हमें सर्वथा निराश नही होना चाहिये, यह मुर्दो का देश नही है।

महाराणा रायमल–निश्चय ही भारत मे साहस और वीरता का अभाव नही है—पश्चिम क्षितिज से यूनानी, शक, हूण, अरब आदि भीषण ववडर की भाँति उठने वाली प्रचण्ड हिंसक शक्तियाँ भारत के वल-विक्रम से पराजित होकर अपना अस्तित्व खो वैठी या लौटकर चली गई, किन्तु अव देश की स्थिति पहले के समान नही है। आज हम पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके है।

राजयोगी–व्रडे आश्चर्य की बात है कि अदम्य उत्साह के धनी सहस्रों मेवाडियो मे नवस्फूर्ति सचारित करने वाले महाराणा रायमल की वाणी में आज पराजय की भावना के स्वर सुनाई पड रहे है।

महाराणा रायमल–इसका कारण है राजयोगी, और वही कारण मुझे यहाँ खीच लाया है। मेवाड मे गहलोतो की ध्वजा फहराने वाले आदि पुरुष बाप्पा रावल मेवाड़ के सिंहासन पर एकलिंग के दीवान की स्थिति मे आसीन हुए थे। उनके वंशज उस आदर्श से पतित हो गये है। आज वे दीवान से राजा—महाराणा वन वैठे है। प्रभुता और ऐश्वर्य का उपभोग करने के लिये राज्यलिप्सा ने उनकी विवेक-वुद्धि को निगल लिया है, आज पुत्र पिता की हत्या करता है, भाई, भाई की गर्दन पर तलवार चलाता है। जान पडता है कि ऊदाजी के प्रेत ने प्रत्येक सीसोदिया के मस्तिष्क को वावला बना दिया है।

राजयोगी–किन्तु मै तो समझता हूँ, आपने स्वर्गीय ऊदाजी के षड्यन्त्रो के घटाटोप को अपने पराक्रम के प्रभंजन से छिन्न-भिन्न कर दिया है। दिल्लीपति का गर्व भी आपने छार कर दिया है। अव आपकी

वाणी में आशंका क्यो प्रकट हो रही है। क्या कोई नया सकट खडा हुआ है ?

महाराणा रायमल—हाँ, और यह सकट बाहर से नही आया, अपितु मेवाड़ के राजमहल मे ही विष-वृक्ष अंकुरित हुआ है। मेवाड के राजसिंहासन के नीचे एक ज्वालागिरि फटने को आतुर है।

राजयोगी—आगामी सकट का आभास मिल जाना शुभ होता है महाराणा जी ! जब आप अपने देश और अपनी शाखा के हित-साधन के लिये सावधान हैं तो भवानी के आशीर्वाद से प्रत्येक नवीन ज्वाला मे तपकर गहलोतो का यश स्वर्ण की भाँति उज्ज्वलतर होता जायगा।

महाराणा रायमल-नही राजयोगी, मुझे गहलोतों की कीर्ति-कौमुदी से देश के भविष्य की, देश अर्थात् भारत के भविष्य की अधिक चिन्ता है। उत्तर भारत मे कोई राज्य-सत्ता ऐसी नही बची जो विदेशियो की बढती हुई बाढ़ को रोक सके। मेवाड़ को ही यह कार्य करना है और इस योग्य बनने के लिये पहले उसे आतरिक दृढ़ता प्राप्त करनी होगी। फिर आगे बढकर भारत की स्वाधीनता के लिये समर छेड़ना होगा। स्वर्गीय महाराणा कुभाजी ने जो कार्य प्रारम्भ किया था उसे हत्यारे ऊदाजी ने मिट्टी मे मिला दिया। हमे वीरवर कुंभा जी के स्वप्न-प्रासाद के खडहरो पर नव निर्माण करना है किन्तु (विचारमग्न हो जाते हैं।)

राजयोगी—किन्तु क्या ?

महाराणा रायमल—किन्तु खेद है कि इस प्रासाद की एक दीवार खडी की जाती है तो कोई दुष्ट, स्वार्थी एव देशद्रोही उसकी किसी दूसरी दीवार को गिरा देता है। मुझे अपनी असमर्थता पर लज्जा आती है। जी चाहता है अपनी तलवार से अपना मस्तक काटकर भवानी के चरणो में चढा दूँ। तब कदाचित मेवाड़ के मतवाले

पथभ्रष्ट राजपूतो को सद्‌वुद्धि प्राप्त हो।

राजयोगी—नही महाराणा जी, आपका मस्तक वहुमूल्य है। मेवाड को अभी उसकी आवश्यकता है। भवानी की आज्ञा है कि जिन मस्तिष्को मे स्वार्थ, राज्यलिप्सा, अधिकार-मद और देशद्रोह के कीटाणु जन्म ले उनको खड्‌ग से काट कर उनकी माला वनाकर देवी की ग्रीवा मे डाल दिया जाये।

(इसी समय नेपथ्य में घोड़ों की टापें सुनाई पड़ती हैं।)

महाराणा रायमल—वे आ रहे है, जिनके मस्तिप्क राज्य-लिप्सा से उन्मत्त हो उठे है, जिन्हे मैने हृदय-रक्त से सिंचित कर पाला है। क्या उनके मस्तक काट सकने की शक्ति मुझमें है ?

राजयोगी—महाराणा जी का तात्पर्य क्या है ?

महाराणा रायमल—मेवाड के राजकुमारो मे युवराज-पद के लिये प्रति-स्पर्धा जाग्रत हो उठी है। वे तलवार से इसका फैसला करना चाहते थे, किन्तु मैंने उन्हे किसी प्रकार अभी तक शान्त रखा है। वे इस वात पर राजी हो गये है कि राजयोगी द्वारा भवानी का आदेश जिसे युवराज-पद प्रदान करने का प्राप्त हो उसे सव सहर्ष स्वीकार करे।

राजयोगी—बहुत कठिन प्रसग है, क्या मुझे यह अप्रिय निर्णय करना ही होगा ?

महाराणा रायमल—हाँ।

राजयोगी—मुझे विश्वास है, कि इसका निर्णय देने की मुझे आवश्य-कता नही पडेगी।

(यह कहकर राजयोगी गर्भगृह में प्रवेश कर दो मृगचर्म एव तीन सुन्दर चांदी की चौकियाँ लाते हैं। एक मृगचर्म मन्दिर के द्वार के वगल में विछाते हैं, एक द्वार के सामने और उसके साथ तीन चौकियाँ भी विछा देते हैं।)

जयमल—आश्चर्य, स्वयं हम ही उसे नही जानते ।

संग्रामसिंह—इस रहस्य को स्पष्ट ही कर दीजिये न राजयोगी जी ।

राजयोगी—तुमने महाराजा श्रीवत्स की कथा सुनी है न ?

पृथ्वीराज—हाँ ।

राजयोगी—उसकी राजसभा मे लक्ष्मी और शनि निर्णय कराने गये थे कि उनमें श्रेष्ठ कौन है ?

जयमल—हाँ ।

राजयोगी—श्रीवत्स ने उनके बैठने के लिये एक स्वर्ण का और एक चाँदी का सिंहासन रखवा दिया था और स्वभाववश लक्ष्मी स्वर्ण के सिंहासन पर विराजमान हो गई और शनिदेव चाँदी के सिंहासन पर ।

संग्रामसिंह—हाँ, तब शनिदेव ने महाराजा श्रीवत्स को अपना निर्णय सुनाने की आज्ञा दी थी ।

राजयोगी—और राजा ने कहा था, निर्णय तो आप दोनो ने स्वयं ही कर लिया । शनिदेव स्वेच्छा से चाँदी के आसन पर बैठकर और लक्ष्मी को स्वर्णासन पर आसीन होने देकर, लक्ष्मी के श्रेष्ठत्व को स्वीकार कर चुके हैं । इसी प्रकार आज आप लोगो ने स्वेच्छा से आसन ग्रहण किये हैं । राजकुमार सग्रामसिंह मृग-चर्म पर बैठे हैं । मृगचर्म पर योगी अथवा राजा ही आसीन होता है । भवानी ने अपने आशीर्वाद की मसि से संग्रामसिंह के भाग्य में राजयोग अंकित कर दिया है ।

पृथ्वीराज—(खड़ा होकर) शनिदेव अपना अपमान नही सह सके थे और पृथ्वीराज भी नही सहेगा । वह महाराणा जी और राजयोगी के इस षड्यन्त्र को विफल करेगा ।

(पृथ्वीराज म्यान से तलवार निकालकर बैठे हुए संग्रामसिंह पर आक्रमण करता है, किन्तु महाराणा रायमल फुरती से अपनी म्यान से

तलवार निकालकर और अपने स्थान से उठकर पृथ्वीराज के प्रहार को अपनी तलवार पर झेल लेते हैं। सभी राजकुमार खड़े होकर और अपनी तलवारें म्यान से निकालते हैं। केवल संग्रामसिंह तलवार नहीं निकालता और शांत चित्त खडा रहता है।)

महाराणा रायमल—धिक्कार है पृथ्वीराज, तुम्हारी इस करतूत पर भवानी भी क्रोध से काँप उठी है। देखो, उनके नयनो से चिनगारियाँ वरसने लगी है। तुमने अपने सहोदर अग्रज पर तलवार का प्रहार कर मनुष्यता को लज्जित करने वाला कार्य किया है, जो वशनाश को आमन्त्रित करने वाला है। कुलकलकी, वहुत अभिमान है तुझे अपने वल पर, अपनी तलवार पर, अपने साहस पर तो निकल जा मेवाड राज्य की सीमा से ! अपनी भुजाओ और तलवार से ही स्वभाग्य का निर्माण कर !

पृथ्वीराज—(महाराणा रायमल के चर्ण-स्पर्श करके) पृथ्वीराज महाराणाजी की आज्ञा का पालन करेगा। मै स्वीकार करता हूँ कि आकाक्षाओ के आवेश मे मै उन्मत्त हो उठा। अभी तक मेरे प्राणो मे तूफान उमड़ रहा है, उसे कही मार्ग प्राप्त नही होता। मेवाड के राज्य-सिहासन की मैने इसलिये चाह की कि मै अपने प्राणो की रण-लालसा को शात कर पाऊँ, मेवाड की राजपताका को हिमालय के शिखर से रामेश्वरम् तक फहराते हुए देखूँ। मेवाडी तलवार का पानी खेबर की घाटियो को भी दिखाऊँ, किन्तु मेरा वह स्वप्न चूर हो गया। फिर भी मुझे सतोष है कि महाराणाजी ने मुझे बाहुवल से स्वभाग्य-निर्माण का अवसर प्रदान किया है। यह भी अच्छा ही हुआ। आज मै सर्वथा एकाकी, केवल एक तलवार लेकर मेवाड से विदा लेता हूँ, किन्तु निवेदन करना चाहता हूँ कि पृथ्वीराज कही भी रहे मेवाड का बनकर रहेगा। सुख के दिनो मे उसे कोई भी याद न करना, किन्तु यदि दुर्भाग्य से मेवाड

पर सकट की घटाएँ घिरेंगी तो यदि वह जीवित रहेगा तो सकट का साझीदार बनने अवश्य आयेगा ।

सग्रामसिंह—महाराणाजी, मेरे वीर भाई को मेरे कारण मेवाड से निर्वासित होना पड़े यह मुझे स्वीकार नही। संग्रामसिंह की तलवार मे कितना बल है यह मालवा, गुजरात और दिल्ली की विदेशी सत्तायें अनेक बार आजमा चुकी हैं और यह भी सत्य है कि पृथ्वीराज का पराक्रम सग्रामसिंह से कम नही है। यदि हम दोनो कधे से कधा भिडाकर मेवाड़ की राज्य-लक्ष्मी के प्रहरी बन सकते तो इस देश का सौभाग्य था, किन्तु न जाने किस कारण सूरजमलजी ने आकर हम भाइयों मे राज्य-लिप्सा जागृत कर दी। इस कुल-कलह की सर्वभक्षी ज्वाला को शांत करने के लिये संग्रामसिंह युवराज-पद परित्याग करने का संकल्प करता है। पृथ्वीराज मेवाड़ से बिदा हो इससे पहले वह भी यहाँ से बिदा हो जायगा और अज्ञातवास करेगा। किन्तु वह यह भी विश्वास दिलाता है कि अपने देश की सुरक्षा के लिये जब भी उसकी भुजाओं की और उसके मस्तक की माँग होगी वह उपस्थित हो जायगा।

(संग्रामसिंह महाराणा रायमल के चरण छूता है—महाराणा रायमल की आँखों से आँसू बह पड़ते हैं।)

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ दुर्ग में सूरजमल के प्रासाद के सामने की वाटिका। समय—प्रभात। ज्वाला संचित सुमनों की चंगेरी सामने रखे हुए माला बना रही है। वाटिका मे कोयल एवं अन्य पक्षियो की मधुर ध्वनियाँ गूंज रही हैं। प्रभात कालीन रवि-रश्मियाँ ज्वाला के मुख-मण्डल पर पड़कर उसकी कांति को अधिक चमका रही हैं। इसी समय तारा प्रवेश करती है। दोनों ही राजकुमारियाँ राजस्थान के अप्रतिम रूप-लावण्य का सुन्दरतम उदाहरण हैं। प्रभातकाल में खिलने वाले शतदल की भाँति उनके आनन प्रफुल्लित हैं, फिर भी जिस प्रकार सरोवर में आकाश में छा जाने वाले बादलो की टुकड़ियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं, उसी प्रकार उनके नयनो के आकाश में एक चिन्ता की छाया-सी आभासित हो रही है।)

तारा—मेवाड के जीवन-कानन की प्रचण्ड ज्वाला को तारा नमस्कार करती है।

(ज्वाला आँखें उठाकर तारा को देखती है।)

ज्वाला—मेवाड़ के भाग्याकाश मे नवोदित तारा का ज्वाला स्वागत करती है। आओ।

(यह कहकर ज्वाला अधबनी माला चंगेरी में डालकर उठ खड़ी होती है।)

तारा—नाम है ज्वाला और काम है माला बनाना।

ज्वाला—ज्वाला के हाथ मे फूलमाला देखकर आश्चर्य होता है तारा को।

तारा—हाँ, आश्चर्य तो होता ही है, क्योकि सुना है तलवार चलाने में ज्वाला पुरुषो के दाँत खट्टे करती रही है।

ज्वाला–ठीक है, तलवार चलाना तो राजपूतों के लिये वच्चों का खेल है। इसे तुम भी जानती हो। तुमने भी यह खेल खेला और खेलते रहने की साध तुम्हे भी है, कि यह भयानक खेल जीवन के सम्पूर्ण रस को आत्मसात् कर ले यह भी तो ठीक नही है। नारी के जीवन में कही न कही कोमल भावनाओं का स्थान होना ही चाहिये।

तारा–(मुस्कराती हुई) तो अव कैसा खेल खेलना चाहती हो, जिसमे फूल-माला का विशेष महत्व रहता है?

ज्वाला–फूलमाला से अनेक खेल खेले जाते हैं। किसी के हाथ में फूलों की माला देखकर कोई उसके अन्तरतम का रहस्य नहीं जान सकता। फूलों से वरमाला वनती है जो दो जीवनों को चिर-संगी वनाती है, फूलों से जयमाला वनती है जो वीर पुरुषो के गले में पड़ती है, फूल समाधि पर भी चढ़ाये जाते हैं और देवता को भी अर्पित किये जाते है। ज्वाला किसलिये फूलों की माला वना रही है क्या इसे तुम जान सकती हो तारा?

तारा–अपने प्रियतम को पहनाने के लिये।

ज्वाला–(मुस्कराकर) तारा, ज्वाला के जीवन में किसी प्रियतम का आगमन अभी तक नही हुआ (चंगेरी में से एक चम्पा का फूल उठाकर देती हुई) ज्वाला इस चम्पा के फूल की भाँति अपनी गंध से पागल कर देने वाली है, किन्तु किसी भ्रमर को उसके पास आने का साहस नही हो सकता। एक वेचारे दिल्लीपति ने दुस्साहस किया था, किन्तु उसे भी मुँह की खानी पड़ी। प्रेम का मधुर खेल खेलना ज्वाला के भाग्य मे नहीं है, वह तो अपने नाम के अनुरूप दशों दिशाओं मे लपटे उठाने का कार्य करना चाहती है।

तारा–किन्तु क्यों? तुमने अभी तो कहा था, नारी के जीवन में कोमल भावनाओं को स्थान होना चाहिये। नारी स्वभावतः कोमल और

स्नेहमयी होती है। इसमें सन्देह नही कि तुम्हारी तरह तारा ने भी अपने हाथ मे शस्त्र पकड़े है, किन्तु वह इसे नारी का स्वाभाविक धर्म नही मानती।

ज्वाला—मै भी नही मानती, किन्तु चाहने पर भी क्या मनुष्य सतत स्वाभाविक पथ पर चल सकता है? मै तुम्हारे हृदय की दुर्बलता को कुछ-कुछ जान सकी हूँ। मेवाड़ के राजमहल की बन्दिनी बनकर जो यह बन की मृगी रह रही है, इसका भी कारण कुछ-कुछ मेरी समझ मे आ रहा है।

तारा—ज्वाला, तारा का जीवन अभी बन्धन से बहुत दूर है, यद्यपि उसकी धारणा है कि सरिता की भाँति नारी के जीवन पर किनारो का बन्धन होना चाहिये। फिर भी तारा ऐसी परिस्थितियो मे से गुजर रही है कि उसे रुकना या बँध जाना स्वीकार नही हो सकता। राजकुमार पृथ्वीराज के कहने से यद्यपि पिताजी ने चित्तौड़ के महाराणा का आतिथ्य स्वीकार किया है किन्तु मै तो चाहती हूँ कि जल्दी से जल्दी राजमहल के वन्दीगृह से हमारे जीवन को मुक्ति प्राप्त हो।

ज्वाला—क्या राजकुमार पृथ्वीराज से तुम्हारे स्वागत-सत्कार मे कोई त्रुटि रह गई है?

तारा—तारा किसी का सत्कार प्राप्त करने के लिए नही आई। वह सघर्षो मे रहना पसन्द करती है, उसे निश्चेष्ट जीवन अप्रिय है। वह पुन: संघर्षों के कँटीले पथ पर जाना चाहती है।

ज्वाला—किन्तु जब सौभाग्य स्वयं ही तुम्हारे चरणो पर न्योछावर होना चाहता है तब संघर्षो को मोल लेने की आवश्यकता ही क्या है?

तारा—तारा किसी की कृपा का दान नही चाहती और इसीलिये उसने निश्चय किया है कि वह चित्तौड दुर्ग से आज ही विदा ले लेगी।

ज्वाला—मैं तुम्हारे निश्चय का मूल कारण जानती हूँ तारा।

तारा—क्या ?

ज्वाला—यही कि तुम्हारा ग्रह कही भी द्वितीय स्थान स्वीकार करने को तैयार नही है।

तारा—क्या तात्पर्य तुम्हारा ?

ज्वाला—यही कि जिसे तुमने अपने हृदय का सम्राट् बनाया है वह मेवाड़ का युवराज-पद प्राप्त नही कर सकता।

तारा—किन्तु तारा को मेवाड के युवराज-पद से क्या प्रयोजन ?

ज्वाला—युवराज-पद से न सही, पृथ्वीराज से तो है। छिपाती क्या हो, कस्तूरी की सुगन्ध एवं प्रीति का पालन क्या कभी छिपाये छिपता है ? वह पवन के वाहन पर आरूढ हो दसो दिशाओ को अपने अस्तित्व का परिचय देता है।

तारा—किन्तु तुम प्रीति के रहस्य को क्या जानो ? तुमने तो सम्भवत· आज तक प्यार का तिरस्कार करना ही जाना है।

ज्वाला—जो तिरस्कार करने योग्य प्यार होता है उसका तिरस्कार करना ही पडता है। तुमने भी तो लालपठान की लालसाओ का तिरस्कार किया। यह मत समझो कि ज्वाला के हृदय मे प्रेम और स्नेह पाने की तृष्णा नही है—लेकिन वह करे क्या ? उसने जब से होश सम्हाला है अपने सामने शवों के ढेर और रक्त की अजस्र वर्षा ही देखी है। रक्त-समुद्र में जीवन-नैया खेते रहना ही उसका जीवन बन गया है।

तारा—रक्त की वर्षा राजपूतानी के प्राणो को पुलकित करे इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नही, किन्तु रक्त-वर्षा का उद्देश्य केवल हिंसक प्रवृत्ति की सतुष्टि नही होना चाहिये। कठोर कार्य के पीछे भी मगल परिणाम की अभिलाषा आवश्यक है।

ज्वाला—हत्या मनुष्यता का उच्च गुण कभी नही रहा, चाहे वह सद्-

उद्देश्य के लिये हो अथवा स्वार्थ साधन के लिये । किन्तु बहन, कसाई बने बिना संसार के कसाईयो से रक्षा भी तो नही की जा सकती । नारी होकर तारा और ज्वाला ने जो शस्त्र पकड़े हैं, जिन हाथो मे मेहदी रचनी चाहिये उन्हे जो रक्त से रंगा है, जिन प्राणो मे प्रीत के सपने पलने चाहिये उनमे रक्त की पिपासा पाली है, तो किसलिये ? भगवती पार्वती को कराला काली का रूप धरना पडा, सो किसलिये ? किसी मंगलमय उद्देश्य के लिये ही न ?

तारा—मै तो इस सम्बन्ध मे तुमसे सहमत हूँ ।

ज्वाला—सहमत हो, किन्तु हिसा का खेल वहुत ही भयानक है और नारी जब अपनी स्वाभाविकता को त्याग कर इस भयानक खेल मे भाग लेती है, तब उसकी भयानकता का अत नही मिलता । ज्वाला के प्राणो मे जो महानाश का ताडव चल रहा है उसे कोई नही जान सकता । आज रक्त के सागर मे सम्पूर्ण चित्तौड़गढ़ विलीन हो जाये तब भी ज्वाला की तृष्णा शान्त नही होगी ।

तारा—राजपूतो के गौरव के प्रतीक चित्तौड दुर्ग ने क्या अपराध किया है ?

ज्वाला—उसकी चट्टानी दीवारों की भाँति उसके स्वामियों के हृदय कठोर और सकुचित है । महाराणा कुम्भा द्वारा स्थापित कीर्ति-स्तम्भ की ऊँचाई की भाँति ही अस्वाभाविक रूप मे उनका अहं ऊँचा है । वे मनुष्य नही, अपने आपको मनुष्येतर मानते है । क्या महाराणा रायमल, क्या राजकुमार सग्रामसिह, पृथ्वीराज और जयमल, क्या मेवाड की महारानियाँ झाला रानी एव शृगारदेवी क्या राजकुमारियाँ, सबका विश्वास है कि उनका व्यक्तित्व वीरता, पावनता और पुण्य की सीमा-रेखा है, और उनकी धारणा है कि संसार के शेष व्यक्ति अकिंचन है, तुच्छ है ।

तारा—क्षमा करना बहन, क्या स्वयं तुम पर यह बात लागू नही होती। तुम भी संसार में द्वितीय स्थान स्वीकार करने को प्रस्तुत नही हो ?

ज्वाला—तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है; मेरी काया में भी तो सूर्य-वंशी रक्त प्रवाहित है। भगवान् राम को भले ही अपने आदर्श जीवन का अभिमान न रहा हो किन्तु उनके वशज तो राम के वंशज होने के कारण अपने आप को अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ मानते है। वे कही भी अपने लिये द्वितीय स्थान स्वीकार नही करते, नाही करेगे।

तारा—किन्तु शेष राजपूत भी इस स्वाभिमान की बीमारी से मुक्त नही है। कोई अपने आपको राम का, कोई कृष्ण का वशज मानता है तो कोई अग्निदेव का पुत्र। परिस्थितिवश दो-चार सौ वर्ष से कुछ राजपूत राजवंश मेवाड़ के गहलोतो का नेतृत्व स्वीकार करने को बाध्य हुए है, किन्तु उनकी आत्मा ने अहं का समर्पण नही किया है। राजपूतो के संगठन मे एकप्राणता नही है और वह बालू के कणो की भाँति बिखर जाते है। भारत की रक्षा करने का उत्तरदायित्व जिन्होने सम्भाला था वे परस्पर विभाजित है, अतएव उनका बल किसी काम मे नही आता, अपितु आत्मनाश का कारण बना हुआ है। आज पिता के हृदय मे पुत्र छुरा भोकता है और भाई पर भाई तलवार तानता है।

(तारा जिस समय अंतिम वाक्य कह रही है, सूरजमल घायल स्थिति में प्रवेश करता है।)

सूरजमल—हाँ, भाई पर भाई ने कायरतापूर्ण प्रहार किया है।

तारा—किस भाई ने किस पर ?

ज्वाला—तुम घायल कैसे हुए, दादा भाई ?

सूरजमल—पृथ्वीराज की तलवार ने सूरजमल पर आघात किया है।

गत रात्रि को महाराणाजी की आज्ञा से हम चारो राजकुमार, मै, सग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल, भवानी के मन्दिर मे राजयोगी से युवराज-पद का निर्णय कराने के हेतु एकत्रित हुए थे। राजयोगी ने सग्रामसिंह के पक्ष मे निर्णय दिया तो पृथ्वीराज ने उत्तेजित होकर सग्रामसिंह पर आक्रमण कर दिया।

तारा–उनका भी हृदय राज्य-लिप्सा मे उन्मत्त होकर विवेक को भूल गया ?

ज्वाला–फिर क्या हुआ दादा भाई ?

सूरजमल–सग्रामसिंह ने स्वेच्छा से युवराज-पद को तिलाजलि दे दी। तब मन्दिर के वाहर आकर मैने कहा, 'अव मेवाड का भावी महाराणा सूरजमल ही है और न्यायतः अधिकार भी सूरजमल का है।' बस इसी वात पर उत्तेजित होकर पृथ्वीराज मुझपर भी टूट पडा। उसने कहा, 'पृथ्वीराज पिता की आज्ञा मानकर मेवाड़ से निर्वासित होना स्वीकार करता है, किन्तु इस वात का भी प्रण करता है कि सूरजमल मेवाड की गद्दी को अपवित्र नही करने पायेगा। और सच पूछा जाये तो वास्तविक अपराधी सूरजमल है। इसी ने हम भाईयो मे मुकुट का मोह जाग्रत किया है और परस्पर प्रतिद्वन्द्विता करने को वाध्य किया है। पृथ्वीराज इस अपराध का दण्ड देगा।'

तारा–दुर्भाग्य भारत का कि वाप्पा रावल के वशज कुरुवंश के पद-चिह्नों पर चल पडे है। मै पूछती हूँ महाराणा वनने की ऐसी लालसा इन सबको क्यो है ? जो महाराणा नही है, वह क्या मनुष्य ही नही है ? सूरजमल जी, किसलिये आप लोग भूखे कुत्तो की तरह राज्य रूपी हड्डी के टुकडे के लिए परस्पर लड़ते है ?

सूरजमल–क्या यह वात भी एक राजपूत बाला को समझानी पड़ेगी ? राजपूत अपने अधिकार और सम्मान के लिये अन्तिम क्षण तक

संघर्ष करता है। तुम्ही बताओ, तारा कि तुम्हारे पिता राव सूरतान टोडा दुर्ग को पुन: प्राप्त करने के स्वप्न को तिलांजलि देकर हाथों में तलवार के स्थान पर हल क्यों नही पकड लेते ? सूरजमल के शरीर पर पृथ्वीराज ने जो आघात किया है वह उसके प्राणो मे बिध गया है। पहले हो सकता था कि सूरजमल मेवाड़ के सिहासन पर आसीन होने की लालसा को अपने हृदय से निकाल देने में सफल हो जाता, किन्तु इस आघात ने उसे नये ही मार्ग पर आरूढ कर दिया है। अब मेवाड के राजसिहासन को प्राप्त करना उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहेगा, चाहे उसे इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये राक्षस ही बनना पड़े।

ज्वाला–दादा भाई, मेरे प्राणों को आज वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त हुई और मुझे पूर्ण शान्ति तभी मिलेगी जब ऊदाजी की सन्तानों का अपमान करने वाले उनसे अपने जीवन की रक्षा की याचना करेगे।

तारा–बहन, तुम्हारे मुँह से ये बाते सुनकर मेरे चित्त को बहुत क्षोभ हुआ है और सूरजमलजी, आप भी विवेक से काम लीजिये। राजपूत क्षणिक उत्तेजना मे आकर ऐसा सकल्प कर बैठता है जिससे केवल उसकी ही नही अपितु, उसके वश और देश की अपकीर्ति होती है। हो सकता है कि किसी नादानी में आकर किसी ने तुम्हारा अनादर किया हो, किन्तु एक व्यक्ति के अपराध का दड सारे देश को देना उचित नही। आप वीर है, पुरुषार्थी है, मेवाड़ के गौरव को अमर रखने मे आप सहायक बन सकते है, किन्तु यदि रक्षक ही भक्षक बन जायगा तो मेवाड़ के सम्मान की रक्षा कैसे हो सकेगी ?

ज्वाला–तारा, आदर्शों की दुहाई देकर तुम पृथ्वीराज के मार्ग को निष्कंटक बनाने मे सफल नही हो सकोगी। मेवाड़ के सिहासन पर अन्यायपूर्ण अधिकार जमाने वालो के दभ को पददलित किये

बिना अब ज्वाला और सूरजमल को शान्ति नही मिल सकती।

सूरजमल–हाँ, मै जानता हूँ, इस समय सूरजमल की शक्ति सीमित है, किन्तु राजपूत साधनो के अभाव मे सकल्प से विरक्त नही होता। हमे जंगल-जगल भटकना पडेगा और कठिन संघर्षो के बाद भी हम अपने सकल्प को पूरा कर ही लेगे इसका भी कोई ठिकाना नही, किन्तु हमारा यह दृढ निश्चय है कि हम मेवाड भूमि मे प्रत्येक क्षण भूकप जैसी स्थिति बनाये रखेगे, जिससे मेवाड की छाती पर खड़े हुए ये ऊँचे-ऊँचे राजप्रासाद खडहर बन जायेगे।

तारा–इस विनाश के खेल को खेलने से क्या मिलेगा तुम्हे ? उत्तेजना के नशे मे राजपूत को तर्क से समझाया नही जा सकता। मेवाड़ मे भवानी के मन्दिर मे गत रात्रि को जो मनुष्यता को लज्जित करने वाला दृश्य उपस्थित हुआ है उससे होने वाली हानि की अभी आप कल्पना नही कर सकते। भगवान् न करे कभी तुम्हारे इस सकल्प का एक अश भी पूर्ण हो। यदि हुआ, तो समझो, मेवाड नही सारे भारत का सर्वनाश निकट आजायेगा। जहाँ तक मुझसे सम्भव होगा, मै राजकुमार पृथ्वीराज का तुमसे सघर्ष रोकूंगी, किन्तु यदि मेवाड के गौरव को धूल मे मिलाने का यत्न किया तो मेरा भी यत्न होगा कि पृथ्वीराज की तलवार मेवाड की ढाल बने।

ज्वाला–किन्तु पृथ्वीराज की ओर से प्रण करने या चुनौती देने का अभी तुम्हे अधिकार नही है तारा।

तारा–तारा पृथ्वीराज से भिन्न नही है, ससार भर के सामने यह स्वीकार करने को वह प्रस्तुत है। पिताजी एव मेरी प्रतिज्ञा हम दोनो के मध्य खडी होकर हमारे शरीरो को अलग रखेगी, किन्तु अन्तरजगत् के रंगमच पर शिव और पार्वती की भाँति हम एक है। मै अन्तिम बार सूरजमल जी एवं बहन ज्वाला से मेवाड के

गौरव के नाम पर, बाप्पा रावल, समरसिंह, चूड़ावत, लाखा, पद्मिनी, हमीर और कुंभाजी जैसे महाप्राणों के नाम पर प्रार्थना करती हूँ कि अपने मस्तिष्क से मुकुट के मोह को निकाल दे और मनुष्य बनने का यत्न करे। बस, यह कहकर मै बिदा लेती हूँ, क्योंकि मुझे भी इसी क्षण मेवाड़ के राजमहल से प्रस्थान करना है।

(तारा का प्रस्थान)

ज्वाला—(अट्टहास करती है) हः हः हः तारा और पृथ्वीराज शिव और पार्वती की भाँति एक है, हः हः ह.।

सूरजमल—इसमें हँसने की क्या बात है ?

ज्वाला—यही तो तुम नहीं समझे दादा भाई। तारा वह हड्डी का टुकडा है जिसके लिये हिसक भूखे कुत्तो में युद्ध हो सकता है। तुम अपनी अभिलाषा को प्राणों मे पाले हुए तमाशा देखो। मै यत्न करूँगी कि तुम्हें शस्त्र भी न पकड़ना पड़े और तुम्हारा संकल्प भी पूरा हो जाये।

सूरजमल—यह कैसे सम्भव है ?

ज्वाला—संभव है, और मै सभव करके दिखलाऊँगी। तारा के सुन्दर रक्त-मांस के पिड के लिये भाई-भाई की तलवारे न टकरा दूँ, तो मेरा नाम ज्वाला नही। विद्युत्-रेखा की भाँति एक योजना मेरे मस्तिष्क मे चमक पड़ी है। अन्दर चलो, मै तुम्हे भी उससे अवगत करा दूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान—एक गुफा। समय—रात्रि। गुफा के एक पार्श्व की एवं पीछे की दीवारें दिखाई देती हैं जो चट्टान मे से काटकर बनाई जान पड़ती हैं। पीछे की दीवार दूसरे पार्श्व की तरफ मंच की चौडाई के अन्त तक चली गई है जिससे जान पड़ता है कि गुफा इस तरफ दूर तक चली आई है। पीछे की दीवार में मंच की चौड़ाई के बीच एक द्वार है। उस द्वार से दिखाई देता है कि गुफा का मुख्य भाग अन्दर की तरफ भी है। द्वार के दोनो ओर दो छिद्र हैं जिनमें से दो लोहे के छड़ बाहर की तरफ निकले हुए हैं, जिनके छोर पर चिथड़े बाँधकर मशालें बनाई गई हैं, जिन्हे तेल छिड़क कर जलाया गया है। द्वार के पास तेल से भरी हुई एक कुप्पी रखी हुई है। गुफा में जहाँ-तहाँ कुछ शस्त्र भी रखे हुए दिखाई देते हैं। राजयोगी और संग्रामसिंह प्रवेश करते हैं। राजयोगी की वेश-भूषा पहले जैसी ही है, लेकिन संग्रामसिंह एक भील युवक के समान जान पड़ता है। उसकी कमर में तलवार बँधी है और हाथ में धनुष-बाण एवं पीठ पर तूणीर है।)

राजयोगी—मै कहता हूँ, तुम्हे व्यर्थ ही इतना कष्ट नही उठाना चाहिये। यद्यपि तुम चाहते हो कि मेवाड़ के राजकुमारो का पारस्परिक सघर्ष समाप्त हो जाय और इसके लिये तुमने युवराज-पद छोडकर भगवान् राम के समान त्याग करने का निश्चय किया है, किन्तु सूरजमल, पृथ्वीराज एव जयमल, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न के समान भाई नही है। जिसके भाग्य मे राजयोग है उसे राजकुमुट अपने मस्तक पर धारण करने से इन्कार नही करना चाहिये। नियति के अमिट लेख को मिटाने का यत्न मत करो सग्रामसिंह !

संग्रामसिह–नियति का लेख अमिट है तो आप मुझे अपनी चाल बदलने के लिये भी क्यो कहते है। नियति को अपनी सामर्थ्य दिखाने का अवसर मिलना चाहिये और मुझे अपना।

राजयोगी–सग्रामसिह, तुम नही जानते कि तुम्हारी अनुपस्थिति मेवाड़ की प्रजा के लिये क्या अर्थ रखती है। राम के वन-गमन पर जिस प्रकार सारी अयोध्या नगरी आकुल हो उठी थी, उसी प्रकार तुम्हारे चले जाने से चित्तौड़ बेचैन है।

सग्रामसिह–किन्तु क्या पृथ्वीराज के चले जाने से मेवाड़ में किसी के हृदय को शोक नही हुआ ?

राजयोगी–शोक क्यों नहीं हुआ। उसके दुस्साहसी स्वभाव के भी अनेक मेवाड़ी प्रेमी है। और ऐसे मेवाडी आज भी उसके विपरीत दिनों के साथी बनकर अपना पराक्रम दिखाने का नया क्षेत्र प्राप्त करने के लिये उसी के साथ चले गये है।

सग्रामसिह–ऐसे कितने मेवाड़ी योद्धा पृथ्वीराज के अनुगामी बने है।

राजयोगी–लगभग पॉच सौ।

सग्रामसिह–पृथ्वीराज जैसे प्रबल पराक्रमी व्यक्ति के लिये पॉच सौ साथी भी बहुत होते है। निश्चय ही उसका पुरुषार्थ, उसका दुर्दमनीय आवेश, कोई नई हलचल पैदा करेगा। और किसी समय यह हलचल शुभ हो सकती थी, किन्तु इस समय जबकि भारत के सारे राज्यो का एक सूत्र मे संगठित होना परम आवश्यक है, पृथ्वीराज का अपने लिये नया राज्य कायम करने का यत्न करना एक समस्या खडी कर देगा। किसी छोटे-मोटे राज्य की स्थापना कर लेने से भी उसकी आकाक्षा को सन्तोष नही होगा।

राजयोगी–सचमुच बात तो यही है। भारत का सम्राट् बन जाने पर भी पृथ्वीराज के उत्तम मस्तिष्क को शान्ति नही मिलेगी। और

सूरजमल भी पृथ्वीराज से किसी प्रकार कम नही । जान पडता है, ऊदाजी का प्रेत उसके मस्तिष्क पर सवार हो गया है । दोनो का सघर्ष मेवाड की शक्ति को जर्जर कर देगा ।

सग्रामसिह–कितना अच्छा होता, यदि ये दोनो महाशक्तियाँ मेवाड एव भारत की गौरव-वृद्धि मे काम आ सकती ।

राजयोगी–मेवाड मे रहते तो इन दो अशुभ ग्रहो को वश मे रख सकने की कुछ सम्भावना हो सकती ।

सग्रामसिह–नही राजयोगी, मुझे ऐसी आशा होती तो मै मेवाड का परित्याग नही करता । मेवाड मे मेरी उपस्थिति इन अशुभ ग्रहो का शमन नही कर सकती । आज मेवाड के सामन्तो मे कुछ लोग पृथ्वीराज के समर्थक है, कुछ लोग सूरजमल के और कुछ जयमल के । इसके अतिरिक्त मेवाड के पडौसी राज्य भी महाराणा कुम्भा द्वारा मेवाड़ की बढाई हुई कीर्ति से ईर्ष्या करते है और वे भी हमारे इस गृह-कलह की ज्वाला को चिर-प्रज्वलित रखने के लिये यत्नशील रहते है । मेरे और पृथ्वीराज के मेवाड भूमि को छोड-कर चले आने से महाराणा जी जयमल को युवराज-पद प्रदान करना उचित समझते होगे ।

राजयोगी–हाँ, उनके हृदय मे तुम दोनो भाइयो के लिये प्रशसा की भावना है, किन्तु जयमल के प्रति उनका विशेप स्नेह सदा से रहा है और इसका कारण महारानी शृगारदेवी है ।

सग्रामसिह–मै जानता हूँ, महाराणा इस सम्बन्ध मे सदा ही दुविधा मे रहते रहे हैं । वह परम्परा एवं न्याय के विरुद्ध कार्य करना पसन्द नही करते, लेकिन उससे उनके जीवन की अशान्ति बढती है । शृगारदेवी शान्त रहने वाली नारी नही है । उसके भाई जोधपुर के महाराजा उसके पक्ष-पोषक है, वे कुछ न कुछ बखेडा खडा करते ही । अतः मैने महाराणा को इस दुविधा से बचाने के लिये

मेवाड़ की राजनीति से अपने आपको अलग कर लिया है। दूसरी बात यह भी है कि मेवाड़ पर दिल्ली की विदेशी सत्ता का रोष किस दिन कौन-सी परिस्थिति खड़ी कर दे इसका कुछ पता नही। मारवाड़ मेवाड़ की उत्तरी सीमा पर प्रथम नाका है। अतः मारवाड़ को मेवाड़ का सहायक रखना परम आवश्यक है। इसीलिये मैंने चाहा कि किसी प्रकार मारवाड़ के महाराणा की पुत्री का पुत्र जयमल मेवाड़ के सिहासन का उत्तराधिकारी घोषित हो जाये।

राजयोगी—किन्तु इसके लिये तुम्हें मेवाड छोड़ने की आवश्यकता तो नही थी।

संग्रामसिंह—मेरा मेवाड़ मे रहना सम्भव हो सकता था। मै जयमल की दाहिनी भुजा बनकर मेवाड़ की सेवा करने को प्रस्तुत था, किन्तु मेरे अकेले के निश्चय से परिस्थिति सुलझती नही, क्योकि पृथ्वीराज की आकांक्षा जयमल से टकराती और यह संघर्ष किसी दिन मेवाड़ और मारवाड़ के सघर्ष मे बदल सकता था। विदेशी सत्ताएँ भी बीच में कूदतीं और उस संघर्ष से मेवाड की बहुत हानि होती। अत: मैंने यही उचित समझा कि मै इस ससय अज्ञातवास करूँ। आज जयमल के लिये मार्ग साफ हो गया है। मै उन्हीं भगवान् राम का वशज हूँ जो अपनी माता कैकेई के मन को प्रसन्न करने के लिये और अपने पिता दशरथ को दुविधा से बचाने के लिये राजसिहासन को लात मार कर चले गये थे। दशरथ को भी अपने छोटे बेटे भरत को युवराज मानना ही पड़ा था।

राजयोगी—किन्तु यह उनकी मनचाही इच्छा नही थी। और इसी कारण उनके प्राण भी चले गये थे।

संग्रामसिंह—किन्तु मेवाड़ के वर्तमान महाराणा को संग्रामसिंह व पृथ्वीराज दोनों के बनवास से कुछ दुःख तो होगा, लेकिन ऐसा नही

कि उनके प्राणों पर ही आ बीते। मेवाड की शक्ति मे जो थोड़ी-सी दुर्बलता दिखाई देगी वह जयमल के नाना जोधाजी के सहयोग से पूर्ण हो जायगी। मारवाड़ के राठौरों के अतुलित बल-विक्रम की समय ने अनेक बार परीक्षा ली है। ऐसा भी हुआ है कि कभी वे मेवाड के शत्रु बनकर भी सामने आये है, किन्तु ज्यादातर वे मेवाड के अनुयायी रहकर मेवाड की सेना के हरावल मे ही रहे है। वे सदा ही रणभूमि मे शकर के प्रलयकर गणों की भाँति सहारकारी सिद्ध हुए है। मैने बहुत सोचकर देखा है कि जयमल का युवराज बनना मेवाड़ के लिये हितकर ही होगा।

राजयोगी—उदारचेता, धीर, वीर संग्रामसिह का ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है, किन्तु एक बात मै स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेवाड़ का हित किसमे है यह मेवाड के महाराणा, महारानियाँ अथवा राजकुमार नही जान सकते, क्योकि सब सग्रामसिंह की भाँति नि.स्वार्थ और त्यागी नही है। इन सबके स्वार्थ टकराते है। मेवाड का हित मेवाड की प्रजा ही समझ सकती है।

सग्रामसिंह—किन्तु मेरा विश्वास है कि मेवाड़ की प्रजा महाराणा की आज्ञा को ईश्वरीय आदेश मानती है।

राजयोगी—नही सग्रामसिंह, प्रजा राजा की प्रत्येक उचित और अनुचित आज्ञा का पालन करे ही यह आवश्यक नही है। प्रजा के वक्षस्थल मे भी धडकने वाला हृदय है। उसके अपने सुख-स्वप्न, अपनी आकाक्षाये है। राजा चाहे राम हो अथवा रावण, उसे ईश्वर का अश मानना ही चाहिये, ऐसा प्रजा सोचती तो मेवाड़ के सामन्त एवं सैनिक ऊदाजी के शासन के प्रति विद्रोह क्यों करते ? महाराणा रायमल जी को भी तो एक दिन तुम्हारी ही तरह अज्ञातवास करना पडा था, किन्तु अत्याचारी, पितृहंता, सत्ता-लोलुप और देशद्रोही ऊदाजी से त्राण पाने के लिये प्रजा

ने अज्ञातवास से उन्हें खोज निकाला। मेवाड़ की प्रजा के सामने आज ऐसा ही अवसर उपस्थित हुआ है। जयमल को मेवाड की पवित्र और गौरवमयी गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित करना...

संग्रामसिह–(राजयोगी के वाक्य में जोड़ता हुआ) मेवाड के हित मे बुरा नही होगा। राजयोगी जी, आप तो जानते है, एक बार दिवगत महाराणा लाखा जी के ज्येष्ठ पुत्र चूडाजी के जीवन में भी ऐसा ही प्रसग आया था। उन्होने भी अपने छोटे भाई मोकल के लिये मेवाड़ की गद्दी छोड़ दी थी।

राजयोगी–हाँ, और मोकल की माँ हसा भी जयमल की जननी शृंगार-देवी की तरह राठौरो की पुत्री थी।

संग्रामसिह–हाँ, और अल्पायु मोकल को गोद में लेकर बाप्पा रावल के सिहासन पर बैठकर मोकल के नाना राव रायमल मेवाड़ के महाराणा बनने का दुस्साध्य स्वप्न देखने लगे थे और नाती की हत्या कर अपनी राज्य-लिप्सा को शात करना चाहते थे।

राजयोगी–किन्तु त्यागी और तपस्वी चूडाजी के पराक्रम ने ही अपने अनुज की रक्षा की थी। कवच बनकर शत्रुओं के सारे प्रहारो को उन्होने विफल कर दिया था और पिता की भाँति अपने अल्प-वयस्क अनुज पर अपने सरक्षण का हाथ रखकर उसे महाराणा-पद की मर्यादा रखने के योग्य बनाया था।

संग्रामसिह–मेवाड का इतिहास त्याग-तपस्या और तेजस्विता के आख्यानो से भरपूर है। सग्रामसिह अपने पूर्वजो के महत् कार्यो से अनुप्राणित होकर जीवन-पथ पर चलना चाहता है। मेरी आप से प्रार्थना है कि गृह-कलह की अग्नि मे मेरे प्राणो को झुलसाने के लिये इस समय मुझे राजमहल के ऐश्वर्य और वैभव की ओर मत खीचिये।

राजयोगी–मेवाड़ की प्रजा की आकाक्षा को तुम भले ही ठुकरा दो

किन्तु अपनी माँ झालारानी की व्यथा को अनुभव कर उन्हें सान्त्वना देने तो पुन: वापिस चित्तौड जाना ही चाहिये। जिस माँ के दो वीर पुत्रो मे से एक निर्वासित कर दिया गया हो और एक स्वय निर्वासित हो गया हो, उसके हृदय पर क्या बीत रही होगी ? यह भी तुम जानते हो कि महाराणाजी को विश्राम के समय मे शृगारदेवी और कुसुम्बा से ही अवकाश नही रहता, तब वह झालारानी को सात्वना के दो शब्द भी कहेगे, इसकी आशा नही है।

सग्रामसिंह—हाँ राजयोगी, मै माताजी की परिस्थिति से कभी-कभी विचलित हो उठता हूँ। मुझ पर पिताजी कितना ही अन्याय कर ले मै उसे सह सकता हूँ, किन्तु माता जी के प्रति उनकी उपेक्षा मुझे व्याकुल कर देती है। यह भी मन की एक दुर्बलता है। माँ से भी बड़ी एक माँ है—हमारा देश। उसके हित के लिये अपनी जननी की दुर्दशा के प्रति मुझे उदासीन बनना ही पडेगा। सचमुच मै मा के कष्ट कम करने मे असमर्थ हूँ।

राजयोगी—असमर्थ नही हो संग्रामसिंह, तुम केवल अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ रहे हो।

सग्रामसिह—नही राजयोगीजी, मनुष्य के कर्तव्यो की सीमाएँ है, यह बात क्या आप जैसे ज्ञानी और साधक को बतानी होगी ? अनेक वार कर्तव्यो मे भी टक्कर हो जाती है, परशुराम को अपनी माँ की हत्या करनी पड़ी, किन्तु धर्म ने उन्हे हत्यारा नही कहा। जननी और जन्मभूमि दोनो के हित मे जहाँ सघर्ष हो, मनुष्य को जन्मभूमि के लिये अपनी जननी के प्रति कठोर होकर भी कर्तव्य का पालन करना चाहिये, क्योकि जननी का सम्बन्ध केवल उस अकेले के साथ है और जन्मभूमि का सम्बन्ध विपुल जन-समूह से है। मानवता के व्यापक सिद्धान्त के अनुसार अकेले

के लिये एक की बलि देनी पड़ती है। इस समय मेवाड का हित इसमे है कि मेवाड़ के सिहासन के लिये होने वाले सत्यानासी संघर्ष से सग्रामसिह अलग रहे।

राजयोगी—और विध्वंसक शक्तियो को हिसक खेल खेलने को खुला छोड़ देवे।

संग्रामसिह—हाँ, राजयोगी जी, दुष्टग्रहों को सत्पथ पर लाने का जब कोई उपाय नही है, तब उन्हे परस्पर टकराने दीजिये। इनकी टक्करों से उत्पन्न होने वाले विद्युत् प्रकाश मे सही रास्ता दिखाई देगा।

राजयोगी—किन्तु मुझे भय है सग्रामसिह, कि तुम्हारा प्रयोग मेवाड के लिये महँगा न पडे। विदेशी सत्ताओ की आँखो को मेवाड़ राज्य का अस्तित्व शूल बना हुआ है। पूर्व मे मालवा, दक्षिण-पश्चिम मे गुजरात और उत्तर मे दिल्ली की बादशाहते गिद्धो की तरह निगाहें लगाये हुए बैठी हैं। वे उसे नोच खाना चाहती है। ऐसे समय मेवाड़ के तरुण तेजस्वी पुत्रो के सहयोग एवं गृह-कलह से इन्हे प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

संग्रामसिह—राजयोगीजी, आप विश्वास रखिये, संग्रामसिह मेवाड की ओर से सर्वथा मुँह मोड़कर नही बैठा रहेगा। उसके श्वासों की धड़कनों मे प्रत्येक क्षण मेवाड के हित-साधन के स्वर बजते रहेगे। जो गाज मेवाड़ के मस्तक को चूर करने के लिये टूटेगी, उसे सग्रामसिह अपने कलेजे पर झेल लेगा।

राजयोगी—सग्रामसिह के विवेक पर सबको विश्वास है, किन्तु मेवाड़ की ढाल बनने के लिये भी तो सग्रामसिह के हाथ में जन-बल और शस्त्र-बल चाहिये।

संग्रामसिह—समय पर साधन स्वय जुट जायेगे राजयोगी जी, भगवान् राम ने वनवास-काल मे भी वानरों की सेना तैयार कर ली।

सग्रामसिंह, उन्ही का वशज सग्रामसिंह, उनके पद-चिह्नो पर चल रहा है। बाप्पा रावल का उत्तराधिकारी जो आज आपके सामने भील के वेश में उपस्थित है, यह निष्प्रयोजन नही है। भारत के ये आदिवासी जिन्हे हमने जगलो मे ढेल दिया है, महान् शक्ति के पुज है। पूज्यतम वीरवर, आदिपुरुष बाप्पा रावल ने इनका उपयोग किया था, मेवाड के आडे वक्त मे ये सदा ही काम आये है। मै इनकी ही सेना एकत्र कर रहा हूँ। ईश्वर न करे मेवाड के राजपूत सामत एव सैनिक गृह-कलह मे फँस कर विभाजित हो जाये और मेवाड के साथ विश्वासघात करे। ऐसे कुसमय मे सग्रामसिंह की यह नई सेना अपने रण-नाद से दिशाओ को गुजा देगी।

राजयोगी—तुम्हारी आशा और विश्वास से भरी हुई वाणी सुनकर राजयोगी की चिन्ता दूर हुई। भवानी का सकेत व्यर्थ नही जायगा सग्रामसिंह, तुम्हे एक दिन मेवाड राज्य की जीवन-नैया की पतवार अपने सबल हाथो मे थामनी ही होगी। भवानी का पुजारी राजयोगी भवानी की ओर से तुम्हारे सत् संकल्प को आशीर्वाद देता है।

सग्रामसिंह—आपके आशीर्वाद ने मेरे आत्मविश्वास को दृढ किया है राजयोगी जी, किन्तु एक बात का वचन मै आपसे चाहता हूँ।

राजयोगी—बोलो वत्स!

सग्रामसिंह—अभी मेरे अनुष्ठान का एव मेरा भी पता किसी को न दीजिये। आपसे भी अपने महायज्ञ मे कुछ सहयोग लेना चाहता हूँ क्योकि सर्व साधारण के हृदय पर धर्म-गुरुओ की वाणी अधिक प्रभाव डालती है, इसलिये मै आपको यहाँ ले आया, अन्यथा मुझे आपसे भी मुँह छिपाना पडता।

राजयोगी—मेरा सौभाग्य है कि तुमने मुझे अपने सत् सकल्प का साथी

बनाया। मै तुम्हारा रहस्य प्राणों के अन्तराल मे छिपाकर रखूँगा।

संग्रामसिंह—तो चलिये, भीतर चलिये, आपसे अभी बहुत चर्चा करनी है।

(गुफा के द्वार से दोनों भीतर प्रवेश करते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(स्थान— प्रथम अंक के चौथे दृश्य वाला। समय—रात्रि का दूसरा प्रहर। तारा एक शिला पर बैठी हुई गीत गा रही है। इस समय वह रणक्षेत्र में आखेट पर जाने वाले शस्त्र-सज्जित राजपूत युवक के वेश में है, किन्तु उसके प्राणो से जो मधुर गीत प्रस्फुटित हो रहा है, उसकी संगति उसकी रण-सज्जा से नहीं मिलती।)

तारा–(गीत)

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती।

व्यथा के पर्वतो पर तो,
हृदय ने है विजय पा ली,
मिलन की सीढियाँ सुन्दर
नही मुझसे चढी जाती।

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती।

विरह के गीत गा-गाकर
दिशाओ को किया कपित,
मिलन के गान गाने मे
विपची मुग्ध शरमाती।

निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती।

सुमन चुन विश्व उपवन से
रची माला किसी के हित,

सजन जब सामने आये,
नही क्यो हार पहनाती ?
निराशा की निशा काटी,
प्रतीक्षा की न कट पाती।

(तारा जब अंतिम छंद गाती है उस समय जयमल उसके पीछे की तरफ से प्रवेश करता है और मुग्ध होकर तारा के गीत को सुनता रहता है। तारा का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता और वह भी चुप-चाप खड़ा रहता है।)

जयमल—(तारा का गीत समाप्त होने पर) सुन्दर, सरस और मादक ! जैसा रूप वैसी ही सुमधुर वाणी है, किन्तु इस ललित और मादक गीत के साथ इस भयानक कृत्रिम और छद्म वेश का क्या मेल है ?

तारा—(चौंककर शिला पर से उठकर जयमल की तरफ मुंह करके) किन्तु मै पूछती हूँ, मेवाड के राजकुमार जयमल के इस समय यहाँ आकर कष्ट उठाने की क्या सगति है ?

यमल—तुमको इस समय मेरा यहाँ आना असगत और अप्रिय लगा ?

तारा—किसी भी कुमारी के पास पर-पुरुष का एकान्त स्थान में अर्ध-रात्रि मे अकस्मात् पहुँचना असंगत और अप्रिय भासित होता ही है ?

जयमल—किन्तु किसी कुमारी का अर्धरात्रि मे निर्जन सरिता-तट पर छद्म वेश बनाकर किसी पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा मे गीत गाना क्या भारतीय नारी की पवित्र परम्पराओ के अनुकूल है ?

तारा—तो आप मुझे भारतीय नारी की परम्पराएँ और सीमाएँ बताने के लिये आये है ?

जयमल—नही।

तारा—तब आपके आने का प्रयोजन क्या है ? मुझसे आपका क्या सम्बन्ध है ?

जयमल–तुम मेवाड के राजमहल मे अतिथि के रूप मे कुछ दिनो तक रही हो, इसलिये मै तुम्हारे लिये नितान्त अपरिचित हूँ, ऐसी बात नही है। परिचित व्यक्ति के पास पहुँचने में मुझे क्यो सकोच होना चाहिये था ?

तारा–जानती हूँ, मेवाड के सारे ही राजकुमार दुस्साहसी हैं, किन्तु तारा को प्रत्येक व्यक्ति का दुस्साहस अच्छा ही लगे, यह आवश्यक नही है। मै पूछती हूँ, आखिर आप यहाँ किस शुभ उद्देश्य से आये है ?

जयमल–मै आपको मनाकर ले जाना चाहता हूँ।

तारा–मनाकर, कहाँ ?

जयमल–चित्तौड़ गढ।

तारा–क्यो ?

जयमल–आपका जगल-जगल भटकना मेरे हृदय को व्यथित करता है।

तारा–आपकी इस संवेदना के लिये बहुत धन्यवाद। किन्तु मैं पूछती हूँ, तारा के प्रति यह अवाछित सवेदना क्यो प्रकट हुई ?

जयमल–कितनी निर्दय हो तुम, सम्वेदना तो मनुष्य का धर्म है। राजपूत तो विशेष रूप से सवेदनशील होते है। दूसरो के दु खो मे भागीदार बनकर अपने जीवन को सकट मे डाल लेना उनके लिये साधारण-सी बात है। तुम्हारे पिता को एक अत्याचारी विदेशी व्यक्ति ने अपनी बपौती से वचित किया है, यह बात मेवाड के राजकुल को व्यथित करती है। मेवाड सदा से ही दीन-दु खी एव पीडितो का सहायक और आश्रयदाता बनकर रहा है।

तारा–राजपूत चाहे कितने ही बडे सकट मे हो वह दीन-दु·खी कहाना और किसी के सहारे पर जीवित रहना पसन्द नही करता।

जयमल–किन्तु, तुमने क्या मेवाड का आतिथ्य मेवाड की सहायता पाने के लिये नही स्वीकार किया था ? अब मेवाड के आश्रय को छोड़-

कर तुम्हारा अचानक चला आना मुझे विस्मय मे डालता है।

तारा—मुझे सन्देह है कि तुम वास्तव मे राजपूत हो।

जयमल—(कुछ आश्चर्य-भरे रोष के साथ) कहती क्या हो तुम ?

तारा—ठीक ही कहती हूँ। राजपुत्र होकर तुम राजपूतों की भावना को नही समझते। तारा ने अथवा राव सूरतान ने किसी भी दिन मेवाड के महाराणा अथवा राजकुमारो से आश्रय की भीख नही माँगी। हमारी तलवार में ताकत होगी तो हम अपनी ही शक्ति से अपनी बपौती का उद्धार करेंगे।

जयमल—व्यर्थ ही चट्टान से सर टकराते रहने को वीरता नही मूर्खता कहा जा सकता है। लक्ष्य तक सरलता से पहुँच सकने का मार्ग जिसके सामने है उसे दुस्साध्य दूर के मार्ग से जाना समझदारी नही है। तुम्हारी कृपा का एक कटाक्ष प्राप्त होने पर मेवाड की सहस्र-सहस्र तलवारे बिजली की भाँति शत्रुओं के मस्तको पर टूट पड़ेगी।

तारा—अ हः ह. हः, कृपा करने वालो को भी किसी की कृपा का याचक बनना आवश्यक जान पड़ता है।

जयमल—हाँ तारा, जयमल तुमसे कृपा की भीख माँगने आया है।

तारा—किन्तु एक क्षण पहले तुम तारा पर और तारा के पिता पर कृपा करने का दम्भ कर रहे थे। मैं पूछती हूँ, तुम्हारा कौन-सा रूप सत्य है ?

जयमल—दोनों ही। जयमल के दो व्यक्तित्व हैं। एक व्यक्तित्व है तुम्हारी कृपा के याचक का, दूसरा व्यक्तित्व है मेवाड़ के भावी महाराणा का।

तारा—अच्छा, तो तुमने अभी से विश्वास कर लिया कि जयमल मेवाड़ का भावी महाराणा होगा। (अट्टहास करती है।)

जयमल—तुम हँसती हो तारा, किन्तु महाराणा जी ने अपना निश्चय

प्रकट कर दिया है। संग्रामसिहजी के चले जाने एव पृथ्वीराजजी के निर्वासन के पश्चात् जयमल के अतिरिक्त युवराज पद को और कौन पा सकता है? भवानी का आदेश भी व्यर्थ हो गया। तारा, सोचो, मेवाड़ की प्रजा तुम्हारी जैसी दिव्य सौदर्यशालिनी और तेजस्विनी महारानी को पाकर धन्य हो जायगी।

तारा–किन्तु कभी तुमने यह नही सोचा कि यदि सचमुच जयमल जैसा कापुरुष बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर आसीन हुआ तो मेवाड की प्रजा इसे अपना परम दुर्भाग्य समझेगी और किसी पामर और पापी व्यक्ति को मेवाड के वीर सेनानी महाराणा के पद पर कभी स्वीकार नही करेगे।

(जयमल का हाथ अनायास ही अपनी तलवार की मूठ पर जाता है।)

तारा–जानती हूँ, आपके पास तलवार है, लेकिन (म्यान से तलवार निकालकर) तलवार तारा के पास भी है। प्रलोभन से मुझे नही पा सके तो यह मत समझो कि तलवार के डर से तारा तुमको समर्पण कर देगी।

जयमल–तारा, तुम्हारे स्थान पर कोई और होता तो मै तुम्हारे विष-बुझे वचनो का उत्तर देता। मुझे पामर और पापी कहने वाले के शरीर के टुकडे-टुकड़े कर देता।

तारा–और इस प्रकार ससार मे मेवाड के एक राजकुमार की न्याय-प्रियता और उदाराशयता का उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित करते।

जयमल–तारा, सहनशीलता की एक सीमा होती है। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय मे जो कोमल भावना है, उसका लाभ उठाकर मेरा अपमान न करो।

तारा–निश्चय ही सहनशीलता की सीमा होती है। तुम्हारा यह रूप मेरे लिये अब अप्रत्याशित नही है। मैने तुम्हारे लिये जिन शब्दो का प्रयोग किया, वह बहुत सोच-समझकर किया है। मैने तुम्हारे

प्राणो में फुफकारने वाले वासना के विषधर का जहर चित्तौड मे रहते हुए भी देख लिया था। मुझे आशा नही थी कि तुम मेरा पीछा करते हुए यहाँ तक आओगे। किन्तु, याद रखो, तुम जैसे जहरीले विषधरो की थूथड़ी कुचल देने की शक्ति तारा में है।

जयमल–(सवेग तारा का तलवार वाला हाथ पकड़ता हुआ) दुष्ट नारी, तेरी वाणी मे शेषनाग के फन से भी अधिक जहर है, किन्तु याद रख, मेवाड के युवराज को अपनी अवज्ञा सहने का अभ्यास नही है। जिस प्रकार सँपेरा भुजग को जहर के दाँत तोड़कर अपनी पिटारी में बन्द कर लेता है, उसी तरह जयमल भी तुम्हे राजमहल मे बन्द रखेगा।

तारा–तो तुम मेरी तलवार छीनकर मुझे बलपूर्वक ले जाओगे ?

जयमल–यदि तुम स्वेच्छा से मेरी सहचरी बनना स्वीकार न करो तो।

तारा–(कृत्रिम कोमलता लाकर) यही तो मै तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती थी। धन्य हो राजकुमार, तुम परीक्षा मे सफल हुए। नारी, पुरुष मे कोमलता और याचकता देखकर मुग्ध नही होती। नारी तो शक्ति और पुरुषार्थ की चेरी है। जो नारियाँ प्रलोभन के जाल मे फँसकर रूप का व्यवसाय करती है वे नारीत्व का कलक है। तुम मुझे मेवाड की भावी महारानी के पद का प्रलोभन देकर नही जीत सकते। तारा तो सीता एवं द्रौपदी की भाँति पुरुष के पुरुषार्थ के लिये होड़ की वस्तु है। जो इस होड मे विजयी होगा, वह पुरस्कार स्वरूप तारा को पावेगा।

जयमल–किन्तु वह होड क्या है, जिसमे जयमल के पुरुषार्थ की परीक्षा हो सकती है ?

तारा–मेरा हाथ छोड़ो तो बताऊँ।

(जयमल हाथ छोड़ देता है।)

जयमल–बोलो !

तारा—जो अपने पुरुषार्थ से हमारे टोडा दुर्ग को जीतेगा वही तारा का जीवन-साथी बनेगा।

जयमल—यह तो कोई कड़ी परीक्षा नहीं है। मैंने तो पहले ही कहा था कि मेवाड़ की सहायता से राव सूरतान अपनी बपौती सरलता से पा सकते हैं। तुम्हीं ने मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया है।

तारा—तारा ने आपके प्रस्ताव को न ठुकराया है, न स्वीकार किया है। मैंने तो तारा को पाने का उपाय तुम्हें बता दिया। पहले परीक्षा देनी होगी, पुरस्कार बाद में प्राप्त होगा।

जयमल—मेवाड़ के गौरव के लिये यह शर्त अपमानजनक है। प्रीति की चौपड़ खेलते हुए मेवाड़ का युवराज अपने वंश के गौरव और सम्मान को भी बाजी पर लगा दे, ऐसा दुष्कर्म वह नहीं करेगा। मेवाड़ का राजकुमार पुरस्कार नहीं चाहता, बल्कि अपनी हृदयेश्वरी के पिता को उसकी बपौती पुरस्कार स्वरूप दे सकता है।

तारा—अर्थात् मैं तुम्हें अपने हृदय का स्वामी पहले ही स्वीकार कर लूं।

जयमल—निश्चय ही। एक साधारण-से राजा की कन्या मेवाड़ के राजकुमार, बल्कि युवराज के निवेदन की अवहेलना करने का दुस्साहस नहीं करने पावेगी।

तारा—त्रिलोक का साम्राज्य, कुबेर का धन एवं इन्द्र का वज्र भी राजपूत बाला को अपने प्रण से नहीं डिगा सकता। उसे विश्वास है, उसके प्रण को पूर्ण करने वाला, एक युवक है जो शीघ्र ही अपने अप्रतिम पुरुषार्थ से बिना किसी की सेना की सहायता के उसके स्वप्न को प्रत्यक्ष सत्य करके दिखायेगा। सुनो, जो पुरुष सैनिक के वेश में अभी यहाँ उपस्थित है, तारा उसी युवक के साथ लक्ष्य-प्राप्ति के लिये अभियान करने के लिये आई है।

(जयमल तारा का हाथ पकड़कर घसीटने लगता है।)

जयमल—ऐसी बात है, तब तो विलम्ब नहीं किया जा सकता। जयमल

भी किसी भी प्रकार से तुम्हे अपने साथ ले जाने के लिये आया है। तुम्हे इसी क्षण मेरे साथ चलना होगा।

(तारा बलपूर्वक जयमल के हाथ से अपना हाथ छुड़ा लेती है और तलवार तानती है।)

तारा—जयमल, तारा को अन्य नारियों की भाँति अबला मत समझो। उसने जीवन भर पुरुषों के साथ रहकर पुरुषो के साथ तलवार का खेल खेला है। तुम जैसे पापी पामरो से रक्षा करने की शक्ति उसमे है।

जयमल—तो मुझे नारी पर शस्त्र उठाना पडेगा। हृदय की प्रत्येक धड़-कन में जिसका नाम गूँज रहा है, उसके सुकोमल शरीर को तल-वार के घावों से विरूप करना पडेगा। नही, यह नही होगा। मै तुमसे हार मानता हूँ। लो, मै अपना मस्तक झुकाता हूँ। यदि संसार भर की कठोरता से तुम्हारे हृदय का निर्माण हुआ है तो काट लो मेरा मस्तक।

(जयमल मस्तक झुकाता है, किन्तु तारा उसके मस्तक पर लात मारती है।)

तारा—दूर हो पापी, नराधम, कायर, मेवाड के वीर वंश को कलंकित करने वाले!

(जयमल तारा के इस व्यवहार से एकदम उत्तेजित हो उठता है और तारा की टाँग पकड़कर भूमि पर पटक देता है। इसी समय एक तीर आकर जयमल के वक्ष में लगता है।)

जयमल—आह!

(जयमल वक्ष में विद्ध बाण को पकड़कर बैठ जाता है। तारा भूमि से उठकर जयमल के पास बैठती है और उसके तीर को निका-लने का यत्न करती है।)

तारा—ओह, तीर वक्ष मे दूर तक घुस गया है। किन्ही बलवान् हाथों

से छोड़ा गया है। राजकुमार जयमल, राजपूत वाला को बल-पूर्वक प्राप्त करना काले नाग के फन पर पैर रखना है। मुझे दु.ख है कि मेवाड के भावी महाराणा पर मेरे किसी हितचिंतक ने घातक प्रहार कर डाला।

जयमल–(टूटे हुए स्वर में) तारा, मुझे सन्तोप है कि इसी जीवन मे मुझे मेरे पाप का फल मिल गया। निश्चय ही मुझसे सारी राज-पूत जाति को लज्जित करने वाली भूल हुई है। किन्तु क्या करूँ, तुम्हारे मादक रूप के आकर्पण ने मुझे पागल कर दिया। मेवाड के इतिहास मे ऐसा दुष्कर्म सम्भवत. मैने ही किया है। मुझे क्षमा कर देना।

(जयमल तारा का हाथ पकडकर उसे तीर निकालने से रोकता है।)

तारा–बहुत दर्द होता है ? साहस करो, उठो, चलो, पास ही हमारी कुटिया है। पिताजी की सहायता से उपचार का उचित प्रबन्ध कर लिया जायगा।

(तारा सहारा देकर जयमल को उठाती है और ले चलती है।)

जयमल–(तारा के सहारे चलता हुआ) तारा, तुम अत्यत दयामयी भी हो।

(दोनो का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(स्थान—सूरजमल के निवासस्थान के पीछे, भवन एवं प्राकार के मध्य का खुला मैदान। दो राजपूत सैनिकाएँ बंदिन वेश में यमुना को लिये हुए प्रवेश करती हैं। यमुना के हाथों में प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में जो कोढ दिखाई देता था, इस समय उसका नाम भी नहीं है। उसके वस्त्र यद्यपि अत्यन्त साधारण है, तथापि उनमें उसका मोहक रूप अपनी आकर्षक छटा दिखाता ही है। दूसरी ओर से ज्वाला प्रवेश करती है, जो इस समय मेवाड़ की एक राजकुमारी को शोभा देने वाले भव्य, सुरुचिपूर्ण एवं आकर्षक वस्त्राभूषणों से सज्जित है। सौन्दर्य तो उसे प्रकृति ने ही प्रदान किया है, किन्तु उसके मुख-मण्डल पर माधुर्य के साथ दृढ़ता भी दिखाई देती है। यद्यपि वह सैनिक वेश में नहीं है तथापि हाथ में तलवार लिये हुए है।)

ज्वाला—रावला में दादा भाई अपने साथियो से मन्त्रणा कर रहे है, इसलिये हमारी राजसभा यहीं जमेगी। (सैनिकाओ से) इसके बन्धन खोल दो और तुम जाओ।

(सैनिकाएं यमुना के बन्धन खोलकर प्रस्थान करती हैं।)

ज्वाला—(यमुना से) इतने दिनो से तुम्हारी ओर ध्यान देने के लिये समय ही नही पा सकी।

यमुना—मेरे जीवन के कुछ दिन शेष थे, इसीलिये राजकुमारी को मेरी सुध नही आई। और यदि आती ही नही, तब भी कोई आश्चर्य की बात नही थी। इस विराट् विश्व में अकिंचन यमुना के जीवन का मोल ही क्या है ?

ज्वाला—नही यमुना, ऐसा न कहो। ससार मे प्रत्येक जड-चेतन का

अपना अलग महत्व है और मानव-प्राणी तो सबसे अधिक महत्व-पूर्ण है। कोई भी व्यक्ति हो, स्त्री हो या पुरुष, उसका महत्व है, तिस पर तुम तो रूप-लावण्य का पारावार हो। मुझे तो आश्चर्य होता है कि उस दिन तुमने अपने अप्सराओ को लज्जित करने वाले रूप को अत्यन्त वीभत्स क्यो बनाया था ?

यमुना–जिसका जीवन दूसरो की दया पर निर्भर है, उसकी अपनी इच्छा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। वह जीवित रहता है तो दूसरो के लिये, मरता है तो दूसरो की इच्छा पर। जिसके पास वैभव और शक्ति है वह बडे-बडे महाप्राणो को इस प्रकार नचा सकता है जिस प्रकार मदारी बन्दर को नचाता है। बेचारी यमुना दिल्लीपति के आदेश को अस्वीकार कैसे करती ?

ज्वाला–सच बताओ यमुना, क्या तुम हृदय से चाहती थी कि मै पकडी जाती और दिल्लीपति की कुत्सित कामना पूर्ण होती ?

यमुना–चाहती न होती तो उनके षड्यन्त्र मे सम्मिलित ही क्यो होती ?

ज्वाला–तुम झूठ बोलती हो।

यमुना–ऐसा समझने का कारण ?

ज्वाला–एक नारी दूसरी नारी को पतन के पथ पर ले जाने वाले षड्-यन्त्रो मे सम्मिलित नही हो सकती।

यमुना–यदि वह वास्तव मे नारी हो। किन्तु यमुना का नारीत्व तो कभी का समाप्त हो चुका है। पतन जिसका जीवन बन गया है, वह धर्म-अधर्म को क्या समझ सके ?

ज्वाला–किन्तु पतन को जीवन बनाने की आवश्यकता ही क्या है ?

यमुना–मानव अनेक परिस्थितियो का दास बन जाता है, विशेष रूप से नारी, जो प्रकृति से अबला है। नारी के उज्ज्वल जीवन पर कालिमा का एक छीटा भी परिस्थितियो के दबाव के कारण पड जाय तो उसे धो सकने का अवसर ससार देता ही नही है। समाज

पुरुष की अपेक्षा नारी पर अधिक निर्दय है। सब ओर से तिरस्कार पाकर नारी का दुःखी और विद्रोही मन पुरुष की निष्ठुरता से बदला लेना चाहता है और पुरुष की कुत्सितता को उत्तेजित कर उसकी नग्नता में वह आनन्द लेती है। पुरुष का कोई ठिकाना नहीं, वह सीता को भी कलंक लगाने से नही चूका।

ज्वाला—किन्तु सीता ने ससार की निष्ठुरता का उत्तर पतन के पथ पर अग्रसर होकर नही, अपितु तप की कठिन राह पकड़कर दिया था।

यमुना—प्रत्येक नारी सीता नही हो सकती। यमुना मे सीता बनने की शक्ति नही थी। मै मानती हूँ कि आत्मत्याग, तप और बलिदान अन्याय से युद्ध करने के प्रभावशाली शस्त्र है, किन्तु इनका प्रयोग कर सकना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं। इनका प्रयोग वही व्यक्ति कर सकता है जो मान-अपमान, सुख और दुःख, जीवन और मरण को समान समझता है। यमुना तो साधारण नारी है। पद-पद पर ठोकर खाकर उसने बदला लेने की ठान ली। समाज के जो ठेकेदार माथे पर मानवता का तिलक लगाकर, गर्व से मस्तक उठाये चलते है, मैने उन्हें अपने चरणो की धूल मस्तक पर रखने को लालायित किया है।

ज्वाला—सचमुच सौन्दर्य मे अद्भुत शक्ति है।

यमुना—हाँ, सौन्दर्य मे शक्ति है, किन्तु निरे सौन्दर्य की शक्ति की भी एक सीमा है। सौन्दर्य की शक्ति को निस्सीम बनाने के लिये मनुष्य के कल्पनाशील मस्तिष्क ने कलाओ का आविष्कार किया। यमुना ने समाज के दम्भ को चूर करने के लिये नृत्य और गान का सहारा लिया। कठिन साधना की। उसके सौन्दर्य और उसकी कला की धूम मच गई। जो नारी समाज मे तिरस्कार की अधिकारिणी थी उसके कृपा-कटाक्ष के याचको की संख्या बढने लगी। एक दिन दिल्लीपति तक कस्तूरी की सुगन्धि के समान उसके रूप-

लावण्य, यौवन एव कला की कीर्ति जा पहुँची। दिल्लीपति दिल्ली की प्रत्येक श्रेष्ठ और सुन्दरतम वस्तु को प्राप्त न करना चाहे यह कैसे हो सकता है ? उन्होने यमुना को याद किया और यमुना की विजय-यात्रा की यह चरम सीमा थी।

ज्वाला—तब तुम साम्राज्ञी क्यो नही बनी ?

यमुना—यमुना की यही साध तो पूरी नही हो सकी। कुछ-कुछ कमी थी यमुना के सौन्दर्य एव कला मे। यमुना दिल्लीपति को इतना मतवाला न कर सकी कि वह इस बात को भूल जाते कि गणिका साम्राज्ञी बनने का अधिकार नही रखती। उन्हें इस बात का होश बना ही रहा कि रूप-यौवन और कला मनुष्य के मनोरजन की वस्तुएँ है और स्वर्ण इन्हे खरीद सकता है। मैने अनुभव किया कि मेरी विजय-यात्रा मेरी पूर्ण पराजय थी। शक्ति और वैभव के आगे मुझे नत-मस्तक होना पडा और मुझे दिल्लीपति की आज्ञा से गुप्तचर का कार्य स्वीकार करना पडा।

ज्वाला—तुम चाहती तो दिल्लीपति की इस आज्ञा को अमान्य कर सकती थी। तुम्हारा महत्व गुप्तचर बनने मे नही, कला की साधिका बनने मे ही है।

यमुना—किन्तु मनुष्य क्या अपना उपयोग अपने प्रिय स्वप्न-साधन के लिये करने मे स्वतन्त्र है ? यदि मै दिल्लीपति की आज्ञा की अव-हेलना करती तो उनकी आसक्ति मुझ पर तलवार का प्रहार बनकर टूटती।

ज्वाला—बहुत मोह है तुम्हे अपने प्राणो का ! नही जानती कि प्राणों का मोह मनुष्य को अपमान सहते रहने को बाध्य करता है ?

यमुना—केवल प्राणो के मोह के कारण यमुना ने दिल्लीपति की आज्ञा शिरोधार्य नही की। कुछ और भी कारण था।

ज्वाला—क्या ?

यमुना–यमुना देखना चाहती थी कि वह रूप कैसा है, जिसने दिल्ली-पति को मेरे बहुपाश से छुडाकर अपना दीवाना बना लिया है।

ज्वाला–तो बस, तुम मुझे देखना भर चाहती थीं, दिल्लीपति के पास पहुँचा देना नहीं ?

यमुना–यदि मुझे वास्तव मे दिल्लीपति की आज्ञा माननी होती तो इतनी सरलता से आपकी डोली मे बैठकर चली नही आती।

ज्वाला–किन्तु तुमने मुझ पर छुरी का प्रहार करना चाहा था।

यमुना–वह तो केवल अभिनय था, ताकि यदि कोई गुप्तचर के कार्यो को भी छिपकर देख रहा हो तो उसे इस बात का सन्देह न हो कि मै अपने कार्य मे बेईमानी कर रही हूँ।

ज्वाला–किन्तु तुमने बेईमानी की क्यों ?

यमुना–दिल्लीपति से बेईमानी करना नारीत्व के प्रति बेईमानी करने से बडा पाप नही है। दिल्लीपति ने मेरे नारीत्व का, मेरी कला का अनादर किया था और मेरे मन मे उनके प्रति क्रोध था। मै उनसे छुटकारा चाहती थी और छुटकारा पाने का सहज उपाय आपकी बदिन बन जाना मुझे मालूम हुआ।

ज्वाला–(मुस्कराकर) तब मेरा अनुमान ही सच निकला। तुम मुझे पकड़वाना नही चाहती थी। व्यर्थ ही तुमने इतने दिनो तक सत्य पर आवरण डालने का यत्न किया। सुनो सुन्दरी, दिल्लीपति की प्रेयसी, तुम्हारी विजय-यात्रा मे ज्वाला बाधा नही डालेगी और न तुम्हारे प्राण ही लेगी, अपितु तुम्हे अपनी बहन के समान मानेगी।

यमुना–क्या कहा 'वहन'! मुझे राजकुमारी ने 'बहन' कहा! आज मेरे जन्म-जन्मान्तर के पुण्य जाग्रत हुए है जो एक मानवी ने मुझे बहन कहा, अन्यथा सभी मुझे पातकी और समाज का कलक ही समझते रहे है। एक युग के पश्चात् यह मधुर सम्बोधन मुझे सुनने को प्राप्त हुआ है।

ज्वाला–ओह, कितनी पुलकित हो उठी हो एक कृत्रिम सम्बोधन से ! मानव-हृदय, विशेष रूप से नारी का कोमल हृदय, स्नेह का कितना प्यासा है ! मैने तुम्हे बहन इसलिये कहा कि मै भी तुम्हारे ही पथ पर चलना चाहती हूँ ।

यमुना–(आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से ज्वाला को देखकर) स्वर्ग की पवित्र देवी कालिमामय धरती पर पाँव रखेगी ?

ज्वाला–हाँ, तुम तिरस्कार की यातना को जानती हो यमुना ! मेरा तन-मन, रोम-रोम उसी यातना मे जल रहा है । मुझे भी प्रतिशोध लेना है ।

यमुना–किससे ?

ज्वाला–मेवाड के सकीर्ण हृदय निष्ठुर पाखड से । सुनो, वर्तमान समाज मे तुम्हे ऊपर उठने को मार्ग नही मिल सकता, और इन ऊँचे कहाने वालो से ज्वाला को लडना है । इस युद्ध मे तुम्हे मेरी सहायता करनी होगी । बोलो बहन, करोगी ?

यमुना–आपने मुझे बहन कहा है । मै इस नाते को निभा सकूँ ऐसा आशीर्वाद मुझे दो राजकुमारीजी ।

ज्वाला–मै आयु और अनुभव में तुमसे छोटी हूँ यमुना, आशीर्वाद बड़े देते है ।

यमुना—आप शक्ति और पद मे मुझसे बड़ी है ।

ज्वाला–शक्ति अनेक प्रकार की होती है । कष्ट देने की शक्ति और कष्ट सहने की शक्ति । कंस मे पहले प्रकार की शक्ति थी, तो देवकी मे दूसरे प्रकार की । इन्द्र को भी, जिसका आयुध वज्र है, जो महान् शक्तिशाली था, मेनका-रम्भा-उर्वशी आदि की शक्ति का उपयोग करना पडा था । बाले, तुम्हे मेरी मेनका बनना होगा ।

यमुना–जीवन का वही अप्रिय खेल मुझे खेलना पड़ेगा ।

ज्वाला–उसे अप्रिय क्यो कहती हो ? काले नाग को जब सँपेरा नचाता

है तो उसे कितना आनन्द आता है ? पुरुष काले नाग से कम नही होता। मेरी यमुना काले नाग के बिल में हाथ डालने का मंत्र जानती है, उसकी निपुणता ने ही मुझे यह प्रस्ताव करने की प्रेरणा दी है। उसने अनेक नागों के विष के दाँत तोड़ डाले है। अब भयभीत होने की आवश्यकता नही। एक और खेल सही, बोलो, खेलोगी ?

यमुना–खेलूंगी।

ज्वाला–भागकर दिल्ली तो नही चली जाओगी, विश्वास दिलाओ।

यमुना–मै समझती हूँ आप आँखों के अंतर के अक्षरो को पढ़ सकने की शक्ति रखती हैं, यदि मुझ पर विश्वास न हो तो मुझे पुनः बंदीगृह में बन्द कर दीजिये।

ज्वाला–पाप और पुण्य दोनों मे मेरा साथ दोगी ?

यमुना–पुण्य मे साथ दे सकने योग्य पुण्य तो मैंने नही किया; हाँ, पाप मे साथ अवश्य दे सकती हूँ।

ज्वाला–पाप को पाप समझकर ही।

यमुना–नही, पाप को पुण्य समझकर। बतलाओ मुझे क्या करना है ?

ज्वाला–महाराणा रायमल की पुत्री आनन्ददेवी ने ज्वाला का अपमान किया है, मै उसे इसका दण्ड दूंगी।

यमुना–कैसे ?

ज्वाला–उसके हृदय की शान्ति को छीन कर, उससे उसका पति छीन कर, उसे उसके पति से अपमानित और तिरस्कृत कराकर।

यमुना–कौन है उसका पति ?

ज्वाला–सिरोही नरेश ! उसे तुम्हें अपनी रूप-शिखा का शलभ बनाना होगा। ऐसा दीवाना कि आनन्ददेवी उसके दर्शन के लिये भी तरस जाय।

(सूरजमल का प्रवेश)

सूरजमल–ज्वाला, तुम यहाँ हो ? कब से तुम्हे खोज रहा हूँ।

ज्वाला–क्यो, कोई आवश्यक कार्य है ?

सूरजमल–हाँ, किन्तु··

(इतना कहकर सूरजमल यमुना की तरफ देखता है।)

ज्वाला–इसकी उपस्थिति मे तुम सम्भवत. बात करना नही चाहते, किन्तु अब यह हमारी सेना की विश्वासपात्र सैनिका है, फिर भी तुम्हारे सकोच को अकस्मात् दूर नही कर सकती। (यमुना से) तुम भवन के सामने मेरी प्रतीक्षा करो।

(यमुना का प्रस्थान)

ज्वाला–(सूरजमल से) अब तो बताओ, मेवाड़ की राजगद्दी कितनी दूर रह गई है ?

सूरजमल–राजगद्दी कितनी दूर रह गई है, यह तो मै नही जानता। इतना जानता हूँ कि राजगद्दी प्रज्वलित ज्वालामुखी का मुख बनने वाली है। उस पर बैठ सकने की शक्ति गहलोत वंश के किसी भी व्यक्ति को प्राप्त हो सकेगी, इसमे मुझे सन्देह है।

ज्वाला–और तुम्हारी बहन भी ऐसा तूफान लाने वाली है, जिससे चित्तौड़ दुर्ग मे भयानक भूकम्प उठ पडे।

(एक सैनिक प्रवेश कर सूरजमल को झुककर नमस्कार करता है।)

सैनिक–अन्नदाता, महाराणा ने आपको स्मरण किया है।

सूरजमल–महाराणाजी की आज्ञा का पालन पहले होगा। शेप सारे काम बाद मे। ज्वाला, हमारी बात अभी अधूरी रहने दो। (सैनिक से) चलो।

(एक ओर सैनिक और सूरजमल, दूसरी ओर ज्वाला का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य वाला। कक्ष की साज-सज्जा लगभग उसी प्रकार की। समय—रात्रि। महारानी शृंगारदेवी स्वर्ण पात्र में कुसुंबा तैयार कर रही है। महाराणा रायमल आते हैं। कमर से खड्ग खोलकर खूंटी पर टांगते हैं। राजमुकुट एवं राजसी पोशाक उतारकर रख देते है और शृंगारदेवी को कुसुंबा तैयार करते हुए देखकर मुस्कराकर बोलते हैं।)

रायमल—अपना वही पुराना शस्त्र पैना कर रही हो, और इस कार्य मे किसी दासी की सहायता लेना भी महारानी को स्वीकार नही है ?

शृंगारदेवी—(मुस्कराती हुई) महाराणाजी, कुसुबा तैयार करना भी एक कला है। मुझे विश्वास है मेरे हाथ का तैयार किया हुआ कुसुबा महाराणाजी को नया जीवन प्रदान करता है।

रायमल—जीवन-प्रदान करता है अथवा जीवन को बेहोश कर देता है।

शृंगारदेवी—नही महाराणाजी, कुसुबा तो नई चेतना, नया होश सचारित करता है।

रायमल—(हंसते हुए) अः हः हः ! तुम्हारी हर वात अनोखी है। कुसुबा और होश, अग्नि और शान्ति, सिह और अहिंसा, यौवन और शील, बिल्कुल उल्टी बाते है महारानी जी।

(महाराणा रायमल पर्यंक पर इस प्रकार बैठते हैं कि उनके पैर जमीन पर रहते हैं।)

शृंगारदेवी—मनुष्य को अपने मौलिक रूप मे ले जाने वाली वस्तु क्या बेहोश करने वाली कही जा सकती है ?

रायमल—क्या पशुत्व ही मनुष्य का मौलिक रूप है ?

शृंगारदेवी—निश्चय ही महाराणा जी (कुसुबा का पात्र महाराणा जी के आगे एक तिपाई पर रखकर) मनुष्य वास्तव मे पशु है, और यदि वह पशु ही बना रहे तो सुखी रहे।

रायमल—तुम तो मनुष्य समाज की गाडी को पुन. आदि युग की तरफ खीच लेना चाहती हो। मनुष्य यदि पशु के समान आचरण करे तो उसे समाज मे रहने कौन दे ? ऐसे व्यक्ति को केवल पागल समझा जा सकता है।

शृंगारदेवी—हाँ, आज का कृत्रिम समाज उसे पागल तो समझेगा ही, किन्तु यदि गम्भीरता से सोचें तो यथार्थ की ओर कदम बढ़ाने में पागलपन की कोई बात नही है। मनुष्य ने ज्ञान, विज्ञान, कला, सस्कृतियाँ, आचार-विचार, धर्म, दर्शन, शासन एवं समाज-व्यवस्थाओ का जो जाल बिछाया है उसने उसे वास्तविकताओ से—यथार्थता से—उसके मौलिक रूप से कही दूर फेक दिया है। मनुष्य सदा ही किसी नशे मे रहता है और नशे की स्थिति मे वह जो सोचता है उसे ही सत्य समझता है।

रायमल—अर्थात्, जब वह नशा नही करता है तब वह नशे मे रहता है।

शृंगारदेवी—यही तो बात है महाराणाजी, मनुष्य निरन्तर ही नशे मे रहता है। ज्ञान के स्पर्श मात्र से मनुष्य को नशा हो जाता है। स्वार्थ को लोग पाशविक वृत्ति कहते है किन्तु वास्तव मे देखा जाय तो स्वार्थ भी एक नशा है जो ज्ञान की मदिरा पीने से होता है। पशु मनुष्य से कम ज्ञानी है, अत. कम नशे मे है और कम स्वार्थी है, कम भयानक है।

रायमल—ह हः ह ! आज तो तुम बहुत ऊँचे तत्व-ज्ञान की बाते कर रही हो, जान पडता है कुसुबा की मात्रा अधिक ग्रहण की है।

शृंगारदेवी—महाराणा जी, मेरी माँ ने जन्म-घुट्टी के साथ ही मद पिलाया है अथवा यो कहिये मेरी माँ के दूध मे जो मादकता थी

उसका नशा मेरे रक्त को रात-दिन उत्तेजित करने को पर्याप्त है और मेवाड़ का राजवंश जो आदर्शों की दुहाई देता है, वह भी तो उनका वशानुगत रक्त में प्रवाहित नशा ही है। यह कुसुबा तो उस नशे को कुछ क्षणों के लिये कम ही करता है। लीजिये न !

(अपने हाथ से शृंगारदेवी पात्र उठाकर महाराणा के मुँह से लगाती है और महाराणा एक घूंट पीकर शृंगारदेवी की ओर बढ़ाते हैं।)

रायमल—प्रत्येक प्रकार का प्याला हमें साथ ही पीना चाहिये।

शृंगारदेवी—(एक घूंट पीकर) महाराणाजी की कृपा है कि मुझे जीवन के प्रत्येक प्रकार के प्याले पीने में अपनी सहयोगिनी बनाये रखना चाहते हैं, किन्तु चाहने पर भी क्या आप अपने अधिकार का एक अंश भी दे सकते है ? और सच पूछा जाय तो आपके अधिकार, आपकी शक्ति और आपका बड़प्पन, ये सब स्वप्न मात्र है। आप स्वयं नियमो, परम्पराओ और आदर्शों से जकडे हुए है। जब आप इस कक्ष मे आते है तभी शृंगारदेवी के अस्तित्व का आप अनुभव करते है, किन्तु जिस समय आपके मस्तक पर राजमुकुट शोभित होता है, शृगारदेवी आपकी आँखों से ओझल हो जाती है। न्यायकारी, वीर और परोपकारी बनने का नाटक करने का एक नशा आपके मस्तिष्क पर सवार हो जाता है। उस समय शृगारदेवी की इच्छाओ का कोई मूल्य नही रह जाता।

रायमल—(उठकर खड़े होते हैं और कक्ष में एक-दो कदम इधर से उधर और उधर से इधर रखते हुए बोलते हैं।) चिर-अतृप्त शृगारदेवी, तुमने महाराणा रायमल को नशे मे रखकर क्या नही कराया ! तुम्हारी अभिलाषा थी कि सग्रामसिंह और पृथ्वीराज जैसे परम पराक्रमी पुत्रों की उपेक्षा कर मै जयमल को युवराज घोषित करूँ। प्रकृति ने तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिये मार्ग साफ कर दिया।

सग्रामसिह ने स्वेच्छा से अपने उचित उत्तराधिकार को लात मार दी और पृथ्वीराज को अपनी उद्दण्डता के कारण निर्वासित होना पडा, अतः तुम्हारा जयमल ही युवराज-पद का अधिकारी बन गया है। अब तुम क्या चाहती हो ? अब भी तुम्हारी अभिलाषा अतृप्त है, तो लाओ, जिस पात्र मे हम कुसुम्बा का पान कर रहे है, उसे मेवाड के महाराणा के हृदय-रक्त से भर लिया जावे और तुम अपने चिर-प्रज्वलित ओठो से उसे पी जाओ। महाराणा के अस्तित्व और व्यक्तित्व को समाप्त कर दो।

शृंगारदेवी–(महाराणा का हाथ पकड़कर उन्हे पर्यंक पर बैठाकर स्नेहमय स्वर में) इस महल मे आकर महाराणा जी का उत्तेजित होना वर्जित है। शृगारदेवी से हजारो अपराध हुए है, इसे वह स्वीकार करती है, किन्तु मै पहले ही कह चुकी हूँ कि मनुष्य ने ज्ञान का फल खाया तो उसमे सोचने की शक्ति आई, सोचने की शक्ति आई तो उसमे स्वार्थो, लालसाओ एव सत्ता-प्राप्ति की आकाक्षाओ की वृत्ति भी। मै पूछती हूँ कि क्या मेवाड के महाराणा यह नही चाहते कि राजस्थान के सारे क्षत्रिय राजा उनकी छत्र-छाया मे आवे ? क्या वह यह नही चाहते कि मेवाड का झडा भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश मे फहराये ? आप भूमि पर अधिकार करना चाहते है, किन्तु शृगारदेवी तो महाराणा के हृदय पर ही एकाधिकार चाहती है। क्या यह अपराध है ? महाराणा पर एकाधिकार का अर्थ है राजमहल पर शृगारदेवी का एकछत्र शासन। राजमहल पर शासन का अर्थ है जिन व्यक्तियो की उपस्थिति जयमल के जीवन के लिये खतरा है उन्हे निर्वासन।

रायमल–कहती क्या हो शृगारदेवी, अब जयमल के जीवन को खतरा किससे है ?

शृगारदेवी–यही बुद्धि लेकर आप मेवाड़ के राजसिहासन पर बैठते है ?

रायमल--श्रृंगारदेवी, तुम अपनी सीमा को लाँघ रही हो। तुम्हे मेरी बुद्धि पर विश्वास नही है ? तब चाहती क्या हो ? क्या मै संग्रामसिह की भाँति तुम्हारे जयमल के लिये राजसिहासन छोड़कर चला जाऊँ ? पति की अपेक्षा तुम्हें पुत्र अधिक प्रिय है, तब फिर संकोच क्यो करती हो, उठाओ खड्ग, करो प्रहार मेरी गर्दन पर। (उठकर स्वयं खड्ग उठाकर श्रृंगारदेवी को देते हैं।) राठौरो की पुत्री ने खड्ग चलाना सीखा है, यह मै जानता हूँ। मनुष्यों के मस्तकों को काट सकने की निर्ममता भी उसे प्राप्त है।

श्रृंगारदेवी--(महाराणा के पाँवों के पास तलवार रखकर) स्वामी, मै हार मानती हूँ। आपके हृदय को दुःख पहुँचाना मेरा उद्देश्य नही है। प्रत्येक माँ अपने पुत्र की हित-रक्षा के लिये यत्नशील रहती है, यह स्वाभाविक ही है और श्रृगारदेवी ने जयमल को मेवाड़ की राजगद्दी का उत्तराधिकारी बनाना चाहा, तो कोई अपराध नही किया। इसी प्रकार यदि कोई माँ जिसके पुत्र निर्वासित हो गये हों, यदि वह प्रतिशोध की भावना से उत्तेजित हो उठे और षड्-यन्त्रों का सहारा ले तो यह भी स्वाभाविक ही है। संग्रामसिंह और पृथ्वीराज के चले जाने के बाद जयमल ही मेवाड़ का कुल-दीपक है। इस दीपक की रक्षा करना मेवाड़ के कुल की रक्षा करना है। मै आपसे केवल इतना कहना चाहती हूँ कि राजमहल की दीवारो के भीतर जो षड्यन्त्र पनप रहे है उनके प्रति साव-धान होने की आवश्यकता है।

(सहसा तारा का प्रवेश। वह गत दृश्य के समान सैनिक वेश मे है। अन्तर केवल इतना है कि उसके वस्त्रों पर जहाँ-तहाँ रक्त के निशान हैं और हाथ में रक्त-रंजित तलवार है।)

तारा--राजकुमार जयमल की जीवन-रक्षा के लिये किसी सावधानी

की आवश्यकता नही है महाराणाजी ! (इतना कहकर वह महाराणाजी के चरण छूती है।)

रायमल–कौन ? राव सूरतान की पुत्री तारा ! इस समय तुम यहाँ ? रक्षको ने रोका नही ?

तारा–महाराणाजी, तारा राजमहल के अन्त.पुर मे रह चुकी है। उसका कही भी प्रवेश वर्जित नही।

शृगारदेवी–महाराणाजी, तारा का रक्त-रजित तलवार लिये हुए शृगारदेवी के कक्ष मे निर्द्वन्द आ सकना इस बात का प्रमाण है कि राजमहल षड्यन्त्रो का केन्द्र बना हुआ है। सग्रामसिह का स्वेच्छा से निर्वासन और पृथ्वीराज का आपकी आज्ञा से निर्वासन, इन षड्यन्त्रो को समाप्त नही कर सका है, बल्कि उन्हे और प्रवल कर रहा है।

रायमल–(तारा से) क्या कहती थी तुम जयमल के सम्बन्ध मे ?

तारा–कह रही थी महाराणाजी, कि उनकी सुरक्षा का भार अब भगवान् ने अपने हाथो मे ले लिया है।

शृगारदेवी–कहती क्या है तू ?

तारा–वे एक राजपूत बाला के रूप की ज्वाला के पतगे बनकर जल गये।

शृगारदेवी–किस राजपूत बाला के ?

तारा–वह राजपूत बाला आपके सम्मुख उपस्थित है। वह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा अपहरण कर मुझे मेवाड के राजमहल मे ले आना चाहते थे।

शृंगारदेवी–दुष्टे, मेवाड़ के युवराज की हत्या करके तू जीवित नही रह सकेगी !

(शृगारदेवी फर्श पर पड़े हुए महाराणा के खड्ग को उठाकर तारा पर प्रहार करती है, किन्तु तारा उस प्रहार को अपनी तलवार से रोककर शृंगारदेवी का हाथ पकड़ लेती है।)

तारा—महारानीजी, तारा ने अनेक तलवारो का पानी देखा है और अनेक तलवार चलाने का दंभ करने वालों का पानी तारा ने उतारा है। आपका क्रोध स्वाभाविक है, क्योंकि आप माँ है। पुत्र की मृत्यु माँ को पागल कर देती है, किन्तु आप यह भी न भूले कि आप मेवाड़ की महारानी है और यदि महारानी न भी होती, तो राजपूत रमणी तो है ही। आप समझ सकती है कि कोई उद्धत युवक किसी राजपूत कुमारी की पवित्रता पर आक्रमण करे तो उसका परिणाम क्या हो सकता है ?

रायमल—तो जयमल ने तुम पर कायरतापूर्ण आक्रमण किया था ?

तारा—हाँ महाराज !

रायमल—तो तुमने स्वयं जयमल की हत्या की ?

तारा—नही महाराणा, मेरे पिता के बाण ने राजकुमार के प्राण ले लिये।

शृगारदेवी—राव सूरतान का यह दुस्साहस मेवाड़ के महाराणा को बर्दाश्त नही करना चाहिये। एक साधारण-सा राजा मेवाड़ के युवराज पर घातक प्रहार करे और महाराणाजी की भृकुटियों मे जरा-सा भी बल न आये, यह आश्चर्य की बात है। मै कहती हूँ, राव सूरतान एव उसकी पुत्री को जीवित ही दीवार पर चुन देना होगा।

तारा—मुझे इसमें कोई आपत्ति नही। यदि मेवाड़ के न्याय-शास्त्र में मनुष्यता का कोई मूल्य नहीं, नारी की पवित्रता का कोई सम्मान नही, राजपूती परम्पराओं का आदर नही, तो महाराणाजी, आप अपनी परमप्रिय महारानीजी की आज्ञा का पालन कीजिये। किन्तु मुझे विश्वास है कि महाराणा मेवाड़ के यश को कलकित नही करेंगे।

शृंगारदेवी—तुम्हारा न्याय-प्रियता की दुहाई देना व्यर्थ है। मेवाड़ के

हाथो मे राव सूरतान और तुम जैसी नारियो को दड देने की शक्ति है ! क्या तुम समझती हो, मेवाड निस्तेज हो गया है ? उसे षड्यन्त्रकारियो और शत्रुओ को अपनी करनी का फल चखाने का बल प्राप्त नही है ?

तारा–महारानीजी, मै मेवाड़ की अजेय शक्ति को जानती हूँ । मेवाड मे अपने से प्रबल शत्रु को दंड देने की भी शक्ति है, किन्तु दड देने का उपयुक्त कारण होना चाहिये । महारानीजी, आप भूल गई है कि जब दिल्लीपति ने ऊदाजी की पुत्री ज्वाला से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना चाहा था तो गहलोत वश की राजकुमारी की पवित्रता की रक्षा करने के लिये सहस्रो मेवाडी तलवारे शत्रु का रक्त पीने को चमचमा उठी थी, वे ही तलवारे क्या अपने आदर्श को, राजपूती परम्परा को भूल जायेगी । अपराधी महाराणा का पुत्र है, इसीलिये क्या महाराणा मेवाड के आदर्श न्याय को तिलाजलि दे देगे ?

रायमल–नही बेटी, पुत्र की मृत्यु से पिता का हृदय भले ही सौ टुकडे हो रहा हो, फिर भी मेवाड का महाराणा अन्याय नही करेगा। तुम्हारे पिता ने राजपूती परम्परा का पालन किया है, यदि उस समय वह जयमल पर दया कर देते तो मै स्वय उसे फाँसी का दंड देता । बेटी, मै तुम्हारे पिता को पुरस्कृत करूँगा ।

शृगारदेवी–नही महाराणाजी, आप होश मे नही है । आदर्शो का नशा पिलाकर तारा तुमको उन्मत्त कर रही है । तुममे पितृत्व की जो कोमल भावनाएँ है उनकी हत्या कर रही है । न्याय भले ही रसातल मे जाये, शृगारदेवी अपने पुत्र के हत्यारो को क्षमा नही करेगी ।

रायमल–शृगारदेवी, तुम्हारा प्रलाप करना स्वाभाविक है, किन्तु यदि तुम्हे भी इस समय न्याय के सिहासन पर बैठा दिया जाय तो तुम

भी वही फैसला दोगी जो मैने दिया है। न्याय के सिंहासन पर बैठने वाले का न कोई पुत्र है न कोई पत्नी, वहाँ सारे नाते समाप्त हो जाते हैं।

(इसी समय पृथ्वीराज प्रवेश करता है।)

पृथ्वीराज—मेवाड़ के महाराणा की जय, मेवाड़ के न्याय की जय।

(महाराणा के चरण स्पर्श करता है।)

रायमल—मेरी आज्ञा के विरुद्ध तुमने राजमहल में आने का दुस्साहस क्यों किया ?

शृंगारदेवी—जयमल को अपने षड्यन्त्र का शिकार बनाकर अब मेवाड की राजगद्दी हथियाने के लिए आये हो ?

पृथ्वीराज—नही माता जी, भाई जयमल की मृत्यु से मेरा हृदय भी दु:खी है। जयमल की मृत्यु से मेरे हृदय को जितना दु:ख हुआ है, उससे अधिक सन्ताप इस बात से हुआ कि गहलोत वंश मे एक ऐसा पुरुष भी पैदा हुआ, जिसने राजपूत कन्या के सतीत्व पर आक्रमण करने का यत्न किया। मेवाड़ के राजमुकुट के प्रति पृथ्वीराज का अब रत्ती भर भी मोह नहीं है। उसकी भुजाओ मे नये राज्य की स्थापना करने की शक्ति है। (महाराणा जी से) पिताजी, आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने मै नही आया हूँ। कुछ क्षणो मे ही चला जाऊँगा, किन्तु जीवन के अति महत्वपूर्ण कार्य में अपने पिता का आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा ही मुझे यहाँ खीच लाई है।

रायमल—किस कार्य मे ?

पृथ्वीराज—पिताजी, आप जानते है कि राव सूरतान ने प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति लालपठान से उनकी बपौती टोड़ा दुर्ग जीतकर देगा, वह उनकी पुत्री तारा का पति बनेगा। मैने अत्याचारी लाल पठान के रक्त से तारा की सूनी माँग को रंगकर इसे

गहलोत राजवश की कुलवधू बनाया है, केवल मुट्ठी भर राजपूत साथियों को लेकर आपके इस कपूत ने राव सूरतान की शर्त को पूरा कर दिया है।

रायमल--(पृथ्वीराज को गले लगाकर) मेरे वीर विजयी पुत्र, तुमने मेवाड राजवश के गौरव को चार चाँद लगा दिये। मै अपने पुत्र और पुत्रवधू को केवल आशीर्वाद ही नही देता बल्कि पुत्र पर से निर्वासन आज्ञा भी वापस लेता हूँ।

(तारा और पृथ्वीराज दोनो सम्मिलित रूप से महाराणा के चरण छूते है। शृगारदेवी सक्रोध देखती रह जाती है।)

(पटाक्षेप)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(स्थान—दूसरे अंक के अन्तिम दृश्य वाला। समय—प्रभात। पर्यंक के पास चौकी पर कुसुंबा पीने का स्वर्ण-पात्र रखा हुआ है। एक कोने में वीणा पड़ी है। पर्यंक पर जो सेज बिछी हुई है उससे जान पड़ता है कि रात में उस पर कोई सोया नहीं है। शृंगारदेवी बेचैन स्थिति में कक्ष में घूम रही है। उसके बाल खुले हुए हैं और वस्त्राभूषण अस्तव्यस्त हैं। सहसा वह कुसुंबा के पात्र को उठाकर फेंक देती है, कोने में से वीणा उठाती है और उसके तारों को इतनी जोर से बजाती है कि वे झनझनाकर टूट जाते हैं। इसी समय ज्वाला प्रवेश करती है। वह शृंगारदेवी के चरण छूती है, किन्तु शृंगारदेवी आशीर्वाद देने के शिष्टाचार का भी पालन नहीं करती। ज्वाला फेंके हुए पात्र एवं वीणा के टूटे हुए तारों को देखकर कुछ व्यंग-भरे स्वर में बोलती है।)

ज्वाला–काकी जी, नारी का सौन्दर्य, कुसुंबा का नशा और वीणा के सुकोमल सरस एवं मादक स्वर, सभी मेवाड़ के नीरस हृदय महाराणा जी को वश मे रखने मे असमर्थ रहे ?

शृंगारदेवी–(चिढ़कर) ज्वाला, तू जले पर नमक छिडकने आई है !

ज्वाला–महारानी जी, इस कुसुंबा के पात्र एवं वीणा के समान ज्वाला भी निरपराध है।

शृंगारदेवी–हाँ, हाँ सब निरपराध है, तारा भी निरपराध है, जो मेरे पुत्र की हत्या कराकर मेवाड़ की भावी महारानी बनी है। पृथ्वीराज निरपराध है जो भाई की हत्या करने वाली को दुल्हन बनाकर मेरे प्राणो को निरन्तर जलाते रहने के लिये यहाँ आ धमका है। महाराणा जी निरपराध हैं जिन्होने पुत्र की हत्या कराने वाली

को अपनी कुलवधू स्वीकार किया है और पुत्र के हत्यारे को जागीर प्रदान की है। अपराधी तो था केवल जयमल, जिसने एक कुमारी राजपूत बाला को जीवन-सगिनी बनाने का यत्न किया।

ज्वाला—काकी जी, यह सब नक्षत्रों का खेल है। शास्त्रो ने कहा है कि पुरुष के भाग्य और नारी के चरित्र को कोई नही जान सकता।

शृगारदेवी—तो क्या नक्षत्रो से शृङ्गारदेवी पराजित हो जाये ? जिस राजमहल मे शृगारदेवी का एकछत्र राज्य था उसी मे वह झाला-रानी की कृपा पर जीवित रहे ?

ज्वाला—महारानी जी, ज्वाला ससार मे किसी से पराजित होना नही जानती, किन्तु देवताओ पर उसका विश्वास है। जैसा भाग्य होता है वैसी बुद्धि बन जाती है। दुष्ट नक्षत्र प्रबल न होते तो मेरे पिता जी को अपने ही पिता की हत्या कर राजभोग करने की इच्छा क्यो होती ? बाबा जी अमृत पीकर तो आये न थे। अन्त मे राज्य पिता ही को मिलता और उनके पश्चात् दादा भाई सूरजमल ही मेवाड़ के सिंहासन पर आसीन होते। मेवाड़ के सिंहासन पर न काका जी बैठ पाते और न शृगारदेवी मेवाड की महारानी बनती, न अपने लाडले पुत्र जयमल को उत्तराधिकार दिलाने का यत्न करती और जब कुछ पाती नही तो कुछ खोने का भी सन्ताप न उठाना पड़ता। काकीजी ससार मे पाना और खोना, सुख और दु ख, राजमहल और झोपडी, सभी कुछ स्वप्न-जगत् की वस्तुएँ है। किसी वस्तु के पाने मे हर्ष क्या, और खोने मे विषाद क्या ?

शृगारदेवी—बड़ी भली अनासक्त परमहस बनती है ज्वाला ! कभी माँ बनी होती तो पुत्र के खोने मे माँ को कितनी व्यथा होती है, इसे जान पाती।

ज्वाला–यह तो सच है; ज्वाला अभी माँ नहीं बनी। माँ बनने का अवसर उसके सामने आया भी, तो उसने ठुकरा दिया और साधारण माँ भी नही, दिल्ली के होने वाले बादशाह की माँ वह बनती, किन्तु जिस देश में ज्वाला ने जन्म लिया है उसका पुत्र उसी का शत्रु होता। जिस प्रकार गुजरात के बादशाह, जिनके पूर्वज टांक क्षत्रिय थे, अब क्षत्रियों के अस्थिबैरी बन गये है। जिस प्रकार मलिक काफ़ूर जो पहले हिन्दू था, हिन्दुओ का घोर विरोधी बन गया था; उसी प्रकार ज्वाला के पुत्र भी होते। माँ बन जाना कोई बडी बात नही है। माँ कहलाने का गौरव तो उन्ही माताओं को होता है जिनकी सन्तान अपनी करनी से मनुष्यता का मुख उज्ज्वल करती है। किसे पता, ज्वाला कभी ऐसी सन्तान पा सकेगी ? किसे पता उसे भी जयमल अथवा ऊदाजी जैसा ही कोई मनुष्यता को लज्जित करने वाला पुत्र प्राप्त हो जाय और अपने साथ अपनी माँ को भी लज्जि करे। अतः ज्वाला ने माँ न बनने का निश्चय किया है।

शृंगारदेवी–पिशाचिनी ज्वाला, तुम मेरे पास मेरे स्वप्नो के खंडहरो को देखकर पैशाचिक आनन्द लेने आई हो या सान्त्वना देने ?

ज्वाला–सचमुच काकीजी, मै स्वय भूल गई कि मै क्या करने आई थी और मुझे यह भी नही सूझ पडता कि मुझे क्या करना चाहिये। मुझे सचमुच इस बात का दुख है कि मै यहाँ अनर्गल प्रलाप करने लगी। आपके दु.ख से मै वास्तव में बहुत दु:खी हूँ। कुछ भी हो, जयमल मेरा भी भाई था।

शृंगारदेवी–नाटक न कर मेरे सामने।

ज्वाला–नाटक करना जानती तो मेरे स्वप्न भी खडहर न बने रहते। विश्वास करो, मै आपकी व्यथा से व्यथित हूँ। आपको मेवाड़ के राजभवन में पीडित होना पड़ा है, क्योंकि मेवाड़ के राजवंश की

परम्पराएँ ऐसी है जिनमे मनुष्यता के लिये कोई स्थान नही है। इसी राजभवन मे ज्वाला भी अपमानित और लाछित हुई है। यह बात दूसरी है कि पहले आप मुझे लाछित करने वालो के दल मे थी, किन्तु आज मेरे दल मे, सताये हुओ के दल मे है। अपमान और वेदना ने आज हमको निकट कर दिया है। तारा को अभिमान है कि उसने अपने पिता के कोई पुत्र न होने के अभाव को अपने सौन्दर्य एव बाहुबल से पूरा किया है। आपकी ज्वाला आपके स्वर्गीय पुत्र के अभाव को दूर कर सकती है।

शृंगारदेवी–कैसे ?

ज्वाला– पृथ्वीराज ने और उस तारा ने आपसे न केवल पुत्र ही छीन लिया, बल्कि इतने दिनो से सहेज कर जिन महाराणा को आपने पालतू हिरण बनाया था, उन्हे भी आपसे छीन लिया है। अतः कुछ भी हो, पृथ्वीराज और तारा के उत्कर्ष को रोकने का यत्न करना चाहिये।

शृगारदेवी–यह मेरे लिये किस प्रकार सम्भव है ?

ज्वाला–सम्भव क्यो नही ? यदि आप ठान ले तो मेवाड राज्य का अस्तित्व डाँवाडोल हो उठे। राठौरो की आप पुत्री हैं और इस समय राठौरो की शक्ति पर मेवाड़ का भविष्य निर्भर है। आपके पुत्र की हत्या कर राठौरो का अपमान किया गया है।

शृगारदेवी–तो तू चाहती है कि एक बार फिर मेवाड और मारवाड़ की सीमाएँ रक्त से रँग दी जाये। एक बार पहले भी मेवाड़ के मुकुट के मोह मे पडकर मारवाड़ और मेवाड़ की तलवारे रण-भूमि मे टकरा चुकी है। क्या अब उस इतिहास की पुनरावृत्ति की जाये ?

ज्वाला–अवश्य ही, अपमान का बदला लेना राजपूत का धर्म है।

शृगारदेवी–तो मैं पितृकुल की सहायता से पतिकुल का सर्वनाश करूँ ?

निस्सन्देह मेरे प्राणों में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही है, किन्तु इस ज्वाला में जलते हुए भी विवेक को सर्वथा तिलाजलि नही दे सकती। तू नही जानती कि नारी के लिये पति क्या है। तूने विवाह ही नही किया। इतिहास साक्षी है कि स्वर्गीय महाराणा मोकल की जननी हसाराव रायमल राठौर की पुत्री थी, किन्तु पतिकुल का सम्मान रखने के लिये उसने अपनी सौत के पुत्र वीर-वर चूडा के सरक्षण मे अपने अल्पायु पुत्र को रखना स्वीकार किया था और अपने पिता के विरुद्ध रण ठान दिया था।

ज्वाला– पतिकुल उसे अपमान और कष्टो से पीडित करना रहे तब भी क्या नारी को विद्रोह नही करना चाहिये ?

शृगारदेवी–तू तो बहुत धार्मिक वृत्ति की स्त्री बनती है। पूजा-पाठ मे बहुत-सा समय लगाती है। देवताओ पर विश्वास रखती है। क्या तूने सती की कहानी नही पढी ? सती दक्ष की पुत्री थी और जब उसके पिता ने यज्ञ किया तो शकर और सती को आमन्त्रित नही किया। फिर भी अपने पति की अवहेलना कर सती अनि-मन्त्रित ही पिता के यज्ञ में गई, किन्तु वहाँ पति का अपमान होते उसने देखा तो उसे इतनी वेदना हुई कि यज्ञ-कुड में कूदकर उसने जान दे डाली। ज्वाला, ऐसा विचित्र है नारी का जीवन। इसे पत्नी और माँ बने बिना पूर्णरूप से तू समझ न सकेगी।

(इसी समय पृथ्वीराज आकर शृगारदेवी के चरण छूता है। शृंगारदेवी के मुख से कोई शब्द नहीं निकलता और आँखों से आँसू प्रवाहित होने लगते हैं।)

पृथ्वीराज–माँ, अपने पुत्र को क्षमा करो।

(शृंगारदेवी फिर भी कुछ नहीं बोलती।)

ज्वाला–मुझे नहीं पता था कि नाटक करने में भी पृथ्वीराज इतना कुशल है।

पृथ्वीराज–(सक्रोध ज्वाला को देखकर) ज्वाला, तू अपनी विप-वुझी बरछी-सी जबान बन्द नही करेगी तो मै इसे सदा के लिये बन्द कर दूंगा।

ज्वाला–दादाभाई, तुम्हारी तलवार का तीखापन तो सब जानते है। अपने सगे भाई पर जिसने घातक वार किया, वह बहन पर भी, ऐसी बहन पर जो सहोदर नही है, शस्त्र उठाने मे कब सकोच करने वाला है। तुम्हारी वीरता तो जग-जाहिर है, किन्तु तुम्हारी नाटक करने की कला आज ही देखने मे आ रही है। जिस नारी के गोद का लाल तुम्हारे षड्यन्त्र ने छीन लिया है, उसे माँ कह-कर तुम छलना चाहते हो?

पृथ्वीराज–ज्वाला, पृथ्वीराज की समर-नीति मे षड्यन्त्र के लिये कोई स्थान नही है। स्वाभिमान की रक्षा के लिये वह अपने सगे भाई से लोहा ले सकता है, लेकिन षड्यन्त्रो का सहारा कभी नही लेगा। पृथ्वीराज जिससे लडना चाहता है, उसे पूर्ण सावधान करके ही लडता है। उसने सिहो की गुफाओ मे घुसकर सोते हुए सिहो को जगाकर उन पर प्रहार किया है।

ज्वाला–तब ठीक है, जयमल की मृत्यु ने मुझे आशका मे डाल दिया था कि पृथ्वीराज मुकुट के मोह मे पड़कर राजवश मे जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यम के घर भेज देगा और दुर्भाग्य से मै और दादाभाई सूरजमलजी राजवश से सम्बन्ध रखते है।

पृथ्वीराज–तुम्हारे पिताजी ने जो परम्परा कायम की है उसका पालन करना पृथ्वीराज के लिये नही उनकी अपनी सन्तान से लिये अधिक सम्भव है।

ज्वाला–पृथ्वीराज, यदि ऊदाजी की सन्तान उनके पद-चिह्नो पर चलती तो पृथ्वीराज को आज युवराज कहाने का सुअवसर प्राप्त ही न होता।

श्रृंगारदेवी—अब यह सर्वनाशी विवाद समाप्त भी होगा या नही ?

पृथ्वीराज—नहीं माँ, इसे विवाद करने दो। इसे पृथ्वीराज का युवराज-पद बहुत अखरता है और दादाभाई सूरजमल भी अनेक बार मेवाड के राजसिहासन पर अपना अधिकार प्रदर्शित कर चुके है। मैं इस विवाद का फैसला तलवार के तर्क से किसी भी क्षण करने को प्रस्तुत हूँ। ज्वाला, तुम्हे और सूरजमल को मेरी चुनौती है कि मेवाड़ के राजसिंहासन पर अधिकार पाने के लिने अपना पूरा यत्न कर देखो। पृथ्वीराज मे ताकत होगी तो तुम्हारे नीच प्रयत्नों को विफल करेगा।

ज्वाला—दादाभाई पृथ्वीराज, राजपूत को चुनौती देना उचित नही है। हो सकता था मैं और सूरजमल मेवाड के हित मे इस गृह-कलह को शान्त रखने मे सहमत हो जाते, किन्तु जब तुम चुनौती देते हो तो हमारे लिये शान्त रह सकना असम्भव करते हो। कुछ भी हो, हम एक ही राजवंश के प्राणी है, रक्त के सम्बन्ध से बँधे हुए है। एक-दूसरे के प्रति हमारी सवेदना होनी चाहिये।

पृथ्वीराज—अब तू भी नाटक करने लगी ?

ज्वाला—नही दादाभाई, मुझमे अनेक दुर्गुण हो सकते है। किन्तु एक सबसे बड़ा दुर्गुण है कि मेवाड राजवश के किसी व्यक्ति का अप-मान मुझसे नहीं सहा जा सकता। जयमल की हत्या मे मेवाड राजवश का अपमान हुआ है और तुमने रूप के लोभी बनकर वासना के उन्माद में मेवाड़ राजवश का अपमान करने वाली नारी से सम्बन्ध जोड़ा है। मेवाड राजवश के व्यक्तियो की उपेक्षा और अवहेलना करने की हिम्मत आज प्रत्येक व्यक्ति को हो गई है।

पृथ्वीराज—ज्वाला, जयमल का कार्य कायरतापूर्ण था और उस काय-रतापूर्ण कार्य का समर्थन पृथ्वीराज कर ही नही सकता था।

ज्वाला—क्योकि उसे जयमल को अपने मार्ग से हटाकर मेवाड की गद्दी पर अपना निष्कटक अधिकार रखना था।

पृथ्वीराज—तू जयमल की नादानी से घट जाने वाली दुर्घटना को मन-माना रूप देकर मेवाड के राजमहल मे सन्देह और अविश्वास के जो बीज बो रही है वह क्या इसलिये नही कि महाराणा रायमल के पुत्रो मे से कोई भी मेवाड के राजसिहासन पर अधिकार रखने मे समर्थ न रहे ?

ज्वाला—दादाभाई, ज्वाला ने ऊदाजी की सन्तान और रायमल की सतान मे कभी अन्तर रखा ही नही, इसीलिये जयमल की मृत्यु से उसका अन्त.करण व्यथित हो उठा और इसी कारण वह आनन्ददेवी की व्यथा से भी व्यथित हो उठी है।

शृगारदेवी—आनन्ददेवी की व्यथा कैसी ?

ज्वाला—आनन्ददेवी के पति सिरोही-नरेश ने एक वेश्या को अपने हृदय की स्वामिनी बनाया है और मेवाड की राजकुमारी को निरन्तर तिरस्कृत और अपमानित किया जा रहा है।

पृथ्वीराज—ज्वाला, तू पृथ्वीराज के हृदय मे एक और नई विध्वसक ज्वाला प्रज्वलित कर रही है।

ज्वाला—दादाभाई, मै असत्य कहती हूँ तो मुझे तुम प्राण-दड दे सकते हो। ऊदाजी की सतान और महाराणा रायमल की सतान को लडना होगा तो वे समर-भूमि मे आमने-सामने अपना बल दिखा लेगे, किन्तु जहाँ गहलोत राजवश के मानापमान का प्रश्न है, वे एक है। ज्वाला यह कभी नही भूल सकती कि उसके सम्मान की रक्षा के लिये महाराणा रायमल के पुत्रो ने अपने प्राणो पर खेल जाने मे भी सकोच नही किया था। अत मै कर्तव्य की प्रेरणा से ही आनन्ददेवी के दु ख की कथा तुम्हारे कानो तक पहुँचा रही हूँ।

श्रृंगारदेवी—फिर भी ज्वाला, हमे सचाई को जाने बिना कोई कदम नही उठाना चाहिये।

ज्वाला—काकाजी, यह तो ठीक है। हाथ कगन को आरसी क्या, आप इसका पता लगवा सकती है।

पृथ्वीराज—ठीक है, यह कथन सत्य हुआ तो सिरोही-निरेश को भी याद हो जायगा कि मेवाड़ की राजकुमारी का अपमान करना कितना मँहगा पड़ता है। (श्रृंगारदेवी से) मैं विशेष कारण से आया हूँ। आपके मन की व्यथा को समझ कर, मै मन ही मन दुःखी था, लेकिन लोगों ने जो तरह-तरह की बाते फैला रखी है, उनके कारण आपके पास आने मे मुझे संकोच हो रहा था। मुझे माँ ने यहाँ भेजा है।

ज्वाला—वे स्वयं क्यो नही आईं ?

पृथ्वीराज—अपने दोनो पुत्रो के चले जाने के बाद से वे रोग-शैया को छोड़ ही नही सकी, उनमे उठने का सामर्थ्य होता तो वे आज यहाँ अवश्य आती। आज उनका एक पुत्र लौट आया है और वे अपेक्षाकृत प्रसन्न अवश्य है, किन्तु साथ ही जयमल की मृत्यु से उन्हें व्यथा भी कम नही है। उन्होने कहलाया है, 'बहन, अब तुम समझ पाई होगी कि पुत्र का वियोग माँ के लिये क्या होता है। बारी-बारी से हम दोनो ने इस व्यथा से परिचय पा लिया है। दुःख भी भगवान् की देन है। उसके पीछे भी मगल की भावना छिपी रहती है। यह दुःख हमारे ऊपर इसलिये आया है कि हम यह जान सके कि किसी दूसरी माँ का पुत्र भी अपना ही पुत्र है। अब हमारा झगड़ा समाप्त हो जाना चाहिये।'

श्रृंगारदेवी—ठीक ही तो कहती है वह, मैने कभी उनके अन्तर को समझा ही नही और मैने ही उन्हे मृत्यु के समीप पहुँचा दिया।

किन्तु भगवान ने मुझ पर दुःख का पहाड़ गिराकर मेरी दुर्बुद्धि को छीन लिया। पृथ्वीराज, तुम मेरे जयमल हो, चलो, मैं झाला-रानी के पास जाऊँगी और उनसे क्षमा माँगूंगी।

(सब का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान—निर्जन मैदान। समय—रात्रि। परदा उठता है तो तीन-चार शिलाएँ जो भूमि से दो फुट ऊँची हैं, मैदान में पड़ी हुई दिखाई देती हैं। संग्रामसिंह एक शिला पर बैठा हुआ है। इस समय वह ग्वाले की वेश-भूषा में है। उसके पैरों के पास मजबूत लाठी पड़ी हुई है और हाथों में एक अलगोजा है, जिसे वह बजा रहा है। राज-योगी प्रवेश करते हैं, किन्तु संग्रामसिंह का ध्यान उनकी तरफ नहीं जाता।)

राजयोगी—तलवार की झकारो मे आनन्द लेने वाला योद्धा अब अल-गोजे की साधना कर रहा है। (संग्रामसिंह कुछ उत्तर न देकर उठता है और राजयोगी के चरण छूता है और योगी आशीर्वाद-सूचक हाथ उसके मस्तक पर रखते हैं।) आज यहाँ तुम्हारी राजसभा का आयोजन है।

सग्रामसिंह—हाँ राजयोगी जी, मेरे जैसे बेघरबार व्यक्ति का क्या, जहाँ भी आसन जमा लिया, घर बन गया, बैठिये।

(राजयोगी एक शिला पर बैठते हैं।)

राजयोगी—मै तो तुम्हारी खोज मे गुफा मे गया था।

संग्रामसिंह—मै द्वाररक्षक को कह आया था, राजयोगी आवे तो इधर भेज देना।

राजयोगी—तुम्हारे संगठन और व्यवस्था की मैं सराहना करता हूँ। साधनहीन एव सम्पत्तिहीन व्यक्ति केवल सदुद्देश्य और लगन की पूंजी लेकर कितना कार्य कर सकता है इसका उदाहरण तुमने उपस्थित किया है। जिन वन-पुत्रो का जीवन पारे के समान चचल है, उनके मन को जीतकर, कैसे उन्हे एक संगठन मे बाँध

लिया है और जो केवल डाके डालने और आखेट करने मे अपने पौरुप की इतिश्री समझते है, उन्हे तुमने किस प्रकार उपयोगी और बलवान् बना लिया है, यह आश्चर्य की बात है ।

सग्रामसिह—आपके आशीर्वाद और भवानी की अनुकम्पा से सग्रामसिह के सारे कार्य योजनापूर्वक होते चले जा रहे है ।

राजयोगी—यह तो ठीक है, किन्तु मेवाड मे हिंसा और प्रतिहिंसा के नित्य नये ही अमानुपिक खेल खेले जा रहे है ।

सग्रामसिह—हाँ, मेवाड की स्थिति का निरन्तर पता लेता रहता हूँ । भाई जयमल की मृत्यु का मुझे बहुत खेद है ।

राजयोगी—खेद है ।

सग्रामसिह—हाँ, खेद तो है ही । वैसे तो राजपूत की मृत्यु पर खेद करना निरर्थक है । उसका एक पाँव सदा ही मरघट पर रहता है । उसके जीवन और मरण मे केवल एक साँस का अन्तर रहता है । किसी भी क्षण यह अन्तर समाप्त हो सकता है । निरन्तर मृत्यु की गोद मे खेलने वाले राजपूत की मृत्यु आश्चर्य और खेद का कारण नही है, किन्तु जयमल की मृत्यु से गहलोत राजवश की कीर्ति को कलक का एक धब्बा लगा है, खेद इसी बात का है।

राजयोगी—ससार मे निष्कलक कौन है ? चन्द्रमा पर कलक का धब्बा उसके सौन्दर्य की वृद्धि करता है । महाराणा रायमल का न्याय मेवाड के यश की ज्योत्स्ना को युग-युग तक उज्ज्वलतम रूप मे चमकाता रहेगा । यदि जयमल की काली करतूत न होती, तो महाराणा के व्यक्तित्व को इतने उज्ज्वल रूप मे प्रकट होने का अवसर ही नही आता । जिन्हे ससार शृगारदेवी का दास समझता था, वे शृगारदेवी के पुत्र के हत्यारे को जागीर दे सके और उसकी पुत्री को अपनी पुत्रवधू स्वीकार कर सके, यह उनके सबल व्यक्तित्व को प्रकट करता है । मुझे इस बात का आश्चर्य है कि

तुम इस समय भी अज्ञातवास से प्रकट नही हुए। यह समय था कि तुम मेवाड़ के गौरव की रक्षा के लिए मेवाड़-वासियों को दर्शन देते।

संग्रामसिंह—नही राजयोगी जी, मेवाड़ के राजमुकुट को प्राप्त करने का सुअवसर सामने आते ही मैं प्रकट हो जाता तो ससार को यही जान पडता कि मेरा त्याग केवल पाखंड था और अभी तक जगल-जगल भटक कर जिन बिखरी हुई शक्तियो को संगठित कर एक सूत्र मे मै पिरो सका हूँ, वे मुझे स्वार्थी और सत्ता का लालची समझकर मेरा साथ छोड़ देती। इसलिये मैने अभी छिपकर रहने मे ही अपना एव देश का भला समझा है। समय आयगा जब संग्रामसिंह के अस्तित्व को छिपाये रखने वाले मेघ हट जायेंगे।

राजयोगी—और सग्रामसिंह का अस्तित्व सूर्य के समान प्रकाशवान् होगा।

संग्रामसिंह—राजगुरुजी, आप मुझे व्यर्थ बड़प्पन न दीजिये। सूर्य बनने की साध सग्रामसिंह को नही है। केवल दीपक बनकर आपसे स्नेह और भवानी से ज्वाला पाकर मेवाड़ के पथ-भटके क्षत्रित्व को मार्ग दिखा सकूँ तो मै अपने जीवन को कृतार्थ समझूँगा।

राजयोगी—तुम भले ही अपनी दृष्टि मे अपने आपको लघु दीप ही समझते रहो, किन्तु इतिहास तुम्हारे कार्यो का उचित मूल्याकन करेगा। मै चाहता हूँ, अब तुम्हे प्रकट हो ही जाना चाहिये।

संग्रामसिह—क्यो ?

राजयोगी—सुना है सूरजमल पृथ्वीराज के युवराज घोषित किये जाने से अत्यन्त असन्तुष्ट है। ये दोनो ही भयानक जन्तु है। दोनो एक दूसरे का रक्त पीने के लिये अपने नखों को तेज कर रहे है। यदि ये एक दूसरे का रक्त पीकर शान्त हो जाते तब भी मेवाड का बहुत अनिष्ट नही होता, किन्तु इनके साथ अनेक सैनिको के प्राण

जायेंगे। मेवाड की शक्ति क्षीण होगी। अत तुम्हे यह रक्तपात रोकना चाहिये।

सग्रामसिह—किन्तु, इस रक्तपात को रोकने के लिये मुझे मेवाड की राजसत्ता लेनी पडेगी। महाराणा जी ने जब पृथ्वीराज से प्रसन्न होकर उसे युवराज-पद सौंपकर मेवाड राज्य की बागडोर उसके हाथ मे दे दी है तो फिर वे अपने निश्चय को बदलेगे भी नही, और यदि बदलना भी चाहा तो पृथ्वीराज इसे अपना अपमान समझेगा। अत इस समय अगर मै मेवाड की राजनीति मे सामने जाकर कोई कार्य करूँगा तो पृथ्वीराज के साथ मेरा सघर्ष अवश्य होगा।

राजयोगी—तब मेवाड़ मे गृह-युद्ध की जो ज्वाला जल रही है उसकी लपटो को शान्त करने का क्या कोई उपाय नही है?

संग्रामसिह—बालक अग्नि को सुन्दर समझकर कौतूहलवश उसे पकडने दौड़ता है और यदि उसे रोका जाता है तो वह समझता है, मुझ पर अत्याचार किया जाता है। गृह-युद्ध की ज्वाला के प्रति पृथ्वी-राज और सूरजमल वेग से झपट रहे है, उन्हे झपटने दो राज-योगीजी, इसी मे मेवाड़ का मगल है।

राजयोगी—गहलोत राजवश के वीर और पराक्रमी राजवशियो के नाश मे ही मेवाड का मगल कैसे है?

सग्रामसिह—राजयोगी जी, किसी राजकुल मे अहम् का नशा एवं दभ का दुर्भावना विवेक-बुद्धि को समाप्त कर देवे तो ऐसे राजकुल का पारस्परिक युद्ध से नाश हो जाना ही देश के लिये कल्याण-कारी होता है। भगवान् कृष्ण ने अपने स्वजनो को ऐसी ही सर्व-नाश की होली खेलने की खुली छुट्टी दे दी थी, क्योकि वे अभि-मान से अभिभूत होकर अपने आदर्शो को भूल बैठे थे।

राजयोगी—वह युग दूसरा था सग्रामसिह! कौरव-पाडवो का महा-

भारत, यदुवशियो का पारस्परिक संघर्ष और ऐसी ही अन्य विभीषिकाएँ, भारत की आधारभूत शक्ति, सर्वसाधारण जन के जीवन पर अधिक प्रभाव नही डाल सकी। राजघरानों के संघर्ष सैनिक शक्तियो की टक्करो में समाप्त हो जाते थे। यह अवश्य है कि कुछ योद्धाओं को संसार से बिदा ले लेनी पडती थी, किन्तु जन-जीवन पर विशेप प्रभाव नही पड़ता था। राज्यो के उलट-फेर भी सर्वसाधारण के जीवन की गति में कोई विक्षेप नही ला सकते थे। भारत में सुख-साधनों मे किसी प्रकार का ह्रास नही होता था। कारण, उस समय भारत में कोई ऐसी शक्ति नही थी जो अपने आपको विदेशी सभझती हो। और किसी विदेशी शक्ति को भारत पर आक्रमण करने का साहस भी नही होता था। अत. उस समय का गृह-युद्ध देश के लिये अधिक घातक सिद्ध नही होता था।

संग्रामसिंह—आपके कथन की सचाई को मै स्वीकार करता हूँ, किन्तु मैं देख रहा हूँ और इतिहास कह रहा है कि प्रत्येक क्षण भारत-भूमि पराधीनता के नाग-पाश मे अधिकाधिक जकड़ी जा रही है। हम छोटे-छोटे राज्य, जाति और वश की संकीर्ण सीमाओं के बाहर अपनी दृष्टि ले ही नही जा सकते। भारत की शक्ति अपार है, किन्तु अजेय नही है। वह अजेय हो सकती है यदि भारतीयो में दूरदर्शिता आ सके, सकीर्णताओ की सीमाये तोड़ी जा सके, व्यक्तिगत हित के ऊपर हम सामूहिक हित का ध्यान रखना सीख सके और सम्पूर्ण देश का जन-बल किसी एक झडे के नीचे आ सके।

राजयोगी—यह कार्य करने के लिये कोई व्यक्ति बाहर से तो नही आवेगा ?

संग्रामसिंह—बाहर से आ भी जावे तो वह विदेशी क्या शत-प्रतिशत

भारत का हो सकेगा ? नही, हमी मे से किसी को देश के इस अन्धकार-युग मे नेतृत्व करना पडेगा। राजयोगी जी, आपके अनुचर सग्रामसिंह ने कभी स्वहित अथवा स्वार्थ की दृष्टि से किसी बात को सोचा ही नही, अन्यथा उसकी बाहुओ मे सूरजमल या पृथ्वीराज से कम बल नही है। उसके सकेत पर सदा ही सहस्रो तलवार विद्युत् की भाँति आकाश मे चमकने को आतुर रही है। आज भी सहस्रो धनुर्धारी भील एव अन्य वनपुत्र प्राणो की बाजी लगाने को तैयार है, किन्तु मान लो अपनो का रक्त बहाकर मै बाप्पा रावल के सिंहासन पर बैठ भी गया तो क्या होगा ? गलत रास्ते से बना हुआ महाराणा क्या सर्वसाधारण के हृदय का राजा हो सकेगा ? ऊदाजी अपने पिता की हत्या कर राजमुकुट अपने मस्तक पर रखने मे सफल हो गये थे, किन्तु विदेशी शक्तियो की सहायता से भी अपने महाराणा-पद को कायम न रख सके और अन्त मे उन्होने और भी अनेक ऐसे कार्य किये जिनसे मनुष्यता को लज्जा आये, इसलिये मै गृह-युद्ध के मार्ग से बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी की ओर नही बढना चाहता।

राजयोगी—तब इस शक्ति-सचय का उद्देश्य क्या है ?

सग्रामसिंह—राजयोगीजी, मेरे प्राणों मे एक अखड और सबल भारत का स्वप्न है, जिसे अवसर पाकर पूर्ण करना चाहता हूँ।

राजयोगी—यह तो ठीक है। तुम्हारा स्वप्न पूरा हो, यह मेरी भी कामना है। अपनी थोडी-सी शक्ति तुम्हारे स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये लगाने को राजयोगी प्रस्तुत है, किन्तु बडे आकाशचुबी महल बनाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति झोपडियो को नष्ट ही होने देवे, यह आवश्यक नही है। मेवाड का राज्य इस समय खतरे मे है। सूरजमल मालवा के सुलतान से सहायता लेकर मेवाड पर चढाई करने का उद्योग कर रहा है। तुम्हारा इस समय

छिपे रहना अथवा तटस्थ रहना भयकर परिणाम उपस्थित कर सकता है।

सग्रामसिंह–कैसी विधि की विडम्बना है कि जिस सूरजमल ने मेवाड के यश की रक्षा करने के लिये अपने पिता से विद्रोह किया था, वह स्वयं राज्य-लिप्सा के उन्माद मे विवेक-बुद्धि गँवा बैठा।

राजयोगी–हाँ, जब ऊदाजी ने दिल्लीपति की विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया था, तब तुम सब भाई एक थे और तुम्हारे नेतृत्व में मेवाड़ के एवं राजस्थान के सभी सामत एकत्र थे। तुम्हारी सुदृढ़ बाहुओं ने दिल्ली की सेना का गर्व चूर कर दिया था, किन्तु अब पृथ्वीराज अकेला है। सूरजमल को मालवा के सुल्तान का सहयोग प्राप्त है। मेवाड के सामन्त अब मेवाड की ओर से युद्ध करने के लिये पहले जैसा उत्साह नही दिखाते। यह भी सम्भव है कि मालवा के सुलतान के साथ गुजरात का बादशाह सम्मिलित होकर अपने चिर-वैरी मेवाड से बदला लेने का यत्न करे। पृथ्वीराज मे उद्दाम आवेश है। वह अवश्य ही शत्रुओं से टकरा जायेगा, किन्तु परिणाम शुभ निकलेगा, इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता।

सग्रामसिंह–चिंता न करो राजयोगी जी, संग्रामसिंह परिस्थिति से पूर्णतः परिचित है। शत्रुओं को यही समझने दे कि मेवाड इस समय विभाजित है, एवं उसकी सैनिक शक्ति अति दुर्बल है। मेवाड की शक्ति कितनी है यह तो समय ही प्रकट करेगा।

राजयोगी–किन्तु पृथ्वीराज को मालूम होना चाहिये कि वह अकेला नही है।

सग्रामसिंह–पृथ्वीराज के स्वभाव को जानते हुए भी ऐसी बात कहते है आप ? संग्रामसिंह का अज्ञातवास से प्रकट होकर उसकी सहायता के लिये प्रस्तुत होना वह अपना अपमान समझेगा। वह जो

कुछ करना चाहता है। उसकी आकांक्षा पूरी होने दीजिये। उसे अकेले ही अपने प्रबल पराक्रम का प्रदर्शन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होने दीजिये। उसके मन को सतोप भी इसी से होगा। मैं उसके उत्साह का पथ अवरुद्ध नही करूँगा।

(दो भील अजमेर के नगर सेठ कर्मचन्द को वन्दी बनाये हुए लेकर आते हैं।)

सग्रामसिह–क्षमा कीजिये, सेठजी मुझे आपको इस तरह यहाँ बुलाना पडा।

कर्मचन्द–अरे कौन, दीपा!

सग्रामसिंह–हाँ सेठजी, यह आपकी गाये चराने वाला दीपा ही है। (भीलों से) सेठजी के वन्धन खोल दो। और तुम जाओ।

(भील कर्मचन्द की मुश्कें खालते हैं और चले जाते हैं।)

संग्रामसिह–आइये (रिक्त पड़ी हुई शिला की ओर संकेत करते हुए) यहाँ वैठिये।

कर्मचन्द–मुझे ज्ञात न था कि एक डाकू छद्म-वेश मे मेरे यहाँ नौकर है।

राजयोगी–सेठजी, बडे भाग्य से किसी को ऐसा नौकर मिलता है।

कर्मचन्द–आप तो कोई साधु पुरुप जान पडते है। आप इन डाकुओं मे क्यो शामिल हुए?

संग्रामसिह–और अब अजमेर के नगर सेठ कर्मचन्दजी को भी इस डाकू-दल मे सम्मिलित होना पडेगा। आप खडे क्यो है, वैठ जाइये। अब तो हम लोगो के वीच आप आ फँसे है। छुटकारे का कोई मार्ग नही है।

(सेठ कर्मचन्द शिला पर वैठते हैं।)

राजयोगी–सेठजी, इस दस्यु-दल मे सम्मिलित होने मे ही आपका निस्तार है।

कर्मचन्द–बनिया तो प्रत्येक कार्य लाभ के लिये करता है। आतंक से

आप उससे कुछ करा नही सकते। चमड़ी चली जाय, लेकिन दमडी न जाये, यह वैश्यों का मूलमन्त्र है।

संग्रामसिंह—किन्तु डाकू तो न चमडी पर दया करते है, न दमडी पर! जहाँ चमड़ी और दमडी दोनो के जाने का डर हो, वहाँ दमड़ी देकर चमडी बचाई जा सकती है, पर दमडी तो बचाई ही नही जा सकती।

राजयोगी—लाभ भी आपको होगा।

कर्मचन्द—कैसा लाभ?

संग्रामसिंह—सबसे बड़ा लाभ तो आपको यह होगा कि अपार धन-सम्पत्ति का संग्रह जो आपने किया है उसकी रखवाली करने की चिन्ता से आप मुक्त हो जायेंगे।

राजयोगी—जब धन ही नही रहेगा तो उसकी रक्षा करने की चिन्ता भी नही करनी पडेगी।

कर्मचन्द—क्या होगा इस धन का?

संग्रामसिह—इस धन से शस्त्र बनाये जायेंगे?

कर्मचन्द—डाका डालने के लिये?

संग्रामसिह—नही, डाकुओ से देश की रक्षा करने के लिये। आप डरे नही, आप पर कोई अत्याचार नही किया जायगा।

राजयोगी—आप जब अपने दीपा का वास्तविक परिचय पायेंगे तो सम्पूर्ण सम्पत्ति इसके चरणों मे रख देना चाहेंगे, और आपको पश्चात्ताप होगा कि इससे भी अधिक सम्पत्ति आपके पास क्यो नही है।

कर्मचन्द—साधु महाराज, लोभ तो अगस्त्य मुनि की प्यास है। वह कब शान्त होती है?

संग्रामसिंह—कभी-कभी बुराई मे से ही भलाई निकल आती है। आपका लोभ हम लोगों के लिये दैवी सहायता सिद्ध हुआ है।

धन-प्राप्ति के लिये हम कहाँ-कहाँ भटकते फिरते। आपके लिये तो आपकी सम्पत्ति एक व्यर्थ का बोझा है, जैसे गधे की पीठ पर सोने की ईंटे लाद दी गई हो। सम्पत्ति का मूल्य और महत्त्व उसके उपयोग मे है। जो स्वेच्छा से सम्पत्ति का सदुपयोग नही करता, काल का कठोर हाथ उसका सब कुछ छीन लेता है। लक्ष्मी को दीर्घकाल तक बेकार एक जगह बैठा रहना अच्छा नही लगता।

कर्मचन्द–तू तो बडी बाते बनाना जानता है।

सग्रामसिह–केवल बडी-बडी बाते ही नही बनाना जानता, बल्कि बडे-बडे काम करने की शक्ति भी रखता हूँ। आपको बन्दी बनाकर यहाँ ले आना शक्तिवान् हाथों का ही काम है, किन्तु मै आपको अपनी शक्ति का साझीदार बनाना चाहता हूँ।

कर्मचन्द–किस तरह ?

सग्रामसिह–आपकी सम्पत्ति का स्वामी बनकर। हम एक-दूसरे की शक्ति की अभिवृद्धि करने वाले है। आपका सहयोग मुझे चाहिये। आपको किसी दिन कष्ट दूंगा, यह मन मे सोचकर ही मैने ग्वाला बनकर आपके यहाँ नौकरी की है। आपका नमक खाया है, अतः आपकी प्रतिष्ठा को बढाना मेरा कर्तव्य है। आपकी सम्पत्ति का जब तक सदुपयोग नही होगा, आपकी प्रतिष्ठा बढेगी नही। अत. मुझे बाध्य होकर आपकी ही प्रतिष्ठा बढाने के लिये आपकी सम्पत्ति छीन लेनी पडेगी।

कर्मचन्द–दुष्ट, मुझे पता नही था कि मैने घर मे नौकर के रूप मे डाकू को आश्रय दे रखा था।

राजयोगी–सेठजी, यह सम्पत्ति किसी के साथ जाती नही है। यह तो व्यर्थ का बोझा है, जो मनुष्य को स्वर्ग मे जाने से रोकता है, अतः आप स्वेच्छा से ही अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देश के लिये प्राण न्योछावर करने वालो को समर्पित कर दीजिये। यदि इन्हे आप

पर बल-प्रयोग करना पडा तो इनके मन को भी सन्तोष नही होगा और आपको भी देने में जो अलौकिक आनन्द आता है उसकी प्राप्ति नही होगी। आप विश्वास रखिये, एक महान् यज्ञ के लिये ही आपकी सम्पत्ति का उपयोग होगा।

कर्मचन्द–यज्ञ करने के लिये ही तुम्हें धन चाहिये था तो मुस्के बाँधकर मुझे यहाँ लाने की आवश्यकता क्या थी ? कम से कम आपकी सफेद दाढी और भगवा वस्त्रो का अपमान तो मै नही कर सकता था।

संग्रामसिह–हमसे भूल हुई, किन्तु आपसे सारी बाते खोलकर कह सकना, आपकी हवेली मे किसी तरह सम्भव नही था और आपको राजी-राजी यहाँ लाना भी सम्भव नही था, इसीलिये यह मार्ग पकड़ना पडा। आइये हमारे साथ, हम अपना यज्ञ-स्थान आपको दिखाये। सारी बाते आप विस्तार से सुन ले। उसके पश्चात् आप स्वेच्छा से हमें सहयोग देगे, इसका मुझे विश्वास है।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(स्थान—गम्भीर नदी के निकट रणक्षेत्र में सूरजमल का डेरा। समय—रात्रि। सूरजमल डेरे मे एक बिस्तर पर आहत अवस्था मे लेटा हुआ है और एक जर्राह उसके जख्मो को सी रहा है। एक सुराही और पानी पीने का पात्र सूरजमल के सिरहाने की तरफ रखा हुआ है। कुछ तलवारें, धनुष-बाण और ढालें आदि अस्त्र-शस्त्र डेरे में रखे हुए दिखाई देते हैं। पृथ्वीराज प्रवेश करता है। सूरजमल पृथ्वीराज को देखकर उठने का यत्न करता है, किन्तु जर्राह उसे रोकता है।)

जर्राह—उठिये नही, जख्मो के टाँके टूट जायेगे।

(सूरजमल जर्राह के आदेश की अवहेलना कर उठकर खडा हो जाता है और पृथ्वीराज को गले लगा लेता है।)

सूरजमल—आओ भैया, तुम्हे देखकर नया जीवन मिल गया है। तुमने तो आज अपनी अप्रतिम शूरवीरता से गम्भीर नदी का पानी लाल कर दिया।

पृथ्वीराज—(आलिंगनबद्ध अवस्था में ही) दादा भाई, आपने भी कम पराक्रम नही दिखाया है। मुझे खेद है कि मेरे हाथो से आपको अनेक जख्म खाने पडे। कुछ भी हो, रक्त का सम्बन्ध जोर मारता ही है। आप पर प्रहार करता हुआ मै ऐसा अनुभव करता था, मानो अपने ही ऊपर प्रहार कर रहा हूँ। आज जब मै सोने का यत्न करने लगा तो आपके शरीर के जख्म मेरी आँखो के आगे घूमने लगे। यत्न करने पर भी मुझे नीद नही आई। इसीलिये, आपके जख्मो को देखने के लिये मुझे आना ही पडा।

(दोनों भाई आलिंगन से अलग होते हैं।)

सूरजमल—(जर्राह से) अब तुम जाओ, मेरे जख्म पृथ्वीराज के आने से ही बहुत कुछ भर गये हैं और न भी भरे तो सूरजमल को इसकी कोई चिन्ता नही है। जो जख्म बिछुडे हुए भाई को पास ला सकते है, वे तो एक प्रकार से भगवान् का वरदान है।

पृथ्वीराज—दादा भाई, व्यर्थ भावुकता मे मत पड़ो, बेचारे को अपना काम करने दो।

सूरजमल—भैया पृथ्वीराज, जख्मो को सीने से लाभ क्या। कल फिर अपने तूफानी तरुण तेजस्वी अनुज से टक्कर होगी और पुराने जख्मो के टाँके तो टूटेगे ही और अनेक नये होंगे। तुमसे इसी प्रकार युद्ध-रत रहना पड़ा तो तुम्हारे दादा भाई के शरीर में इन्द्र के सहस्र नयनो की भाँति जख्म ही जख्म दिखाई देगे। (जर्राह से) तुम जाओ, भाई। रण-मद के मतवाले राजपूत जख्मों की चिकित्सा नही कराया करते।

(जर्राह अपना सामान लेकर जाता है।)

सूरजमल—(पृथ्वीराज से) तुम बड़े दुस्साहसी हो। यहाँ शत्रु के डेरे में निर्द्वन्द चले आये।

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज दुस्साहसी तो है ही, साथ ही विश्वास का धनी भी। इसे गहलोत राजवश के रक्त पर अटूट विश्वास है। बाप्पा रावल के वशजो मे दुर्भाग्य से कोई एक ऊदाजी भले जन्म ले ले, अन्यथा मनुष्य को लज्जित करने वाला कार्य इसमे से कदाचित ही कोई करे। मुझे विश्वास है कि ऊदाजी का पुत्र भी समर-भूमि मे चाहे कितना ही भयंकर और निर्मम हो, किन्तु समर-भूमि के बाहर एक स्नेही और ममतामय मनुष्य है। मेवाड़ का राजमुकुट यदि वह अपने मस्तक पर रखेगा तो किसी पर ओछा प्रहार करके नही, किसी षड्यन्त्र के जोर पर नही, बल्कि

खुले मैदान मे अपने प्रतिद्वन्दी को परास्त कर।

सूरजमल—(बैठते हुए) सूरजमल पर जब तुमने इतना विश्वास किया तो वह भी विश्वासपात्र बनने का यत्न करेगा। समर-भूमि मे हम एक दूसरे के रक्त के प्यासे रहकर भी समर-भूमि के बाहर बन्धुत्व का पालन करेगे।

पृथ्वीराज—यही भारत के क्षत्रियो की परम्परा है। महाभारत के युद्ध मे यही तो होता था। कौरव और पाडव दिन भर प्रलय की विनाश-लीला मे रत रहकर रात्रि को स्नेहपूर्वक परस्पर चर्चाएँ करते थे। हमे उस परम्परा का पालन करना चाहिये।

सूरजमल—निश्चय ही, सूरजमल उसी उदार परम्परा का पालन करेगा। छल-प्रपंच से प्रतिद्वन्दी की असावधान स्थिति मे हत्या कर डालने मे कोई वीरता नही। सूरजमल अपने रक्त के सम्बन्धियों से सघर्ष करेगा। रक्त की नदियाँ प्रवाहित करेगा, किन्तु राजपूती परम्परा को बदनाम नही करेगा।

पृथ्वीराज—दादा भाई, किसी भी राजपूत का संहारक रूप देखकर, पृथ्वीराज को तो आनन्द ही प्राप्त होता है, जैसे कला के प्रेमी नाटक, नृत्य और सगीत आदि के प्रदर्शनो मे रस-विभोर होकर आनन्द पाते है, उसी प्रकार मुझे युद्ध की विनाश-लीला देखकर आनन्द आता है। जिस प्रकार किसी मद्यप को सुरा-सेवन से आल्हाद प्राप्त होता है उसी प्रकार पृथ्वीराज को समर-भूमि मे शस्त्र-संचालन से, जिस प्रकार भक्त को भगवान् की उपासना मे आनन्द आता है उसी प्रकार पृथ्वीराज शस्त्रो की झकार और आहतो के चीत्कार से पुलकित होता है।

सूरजमल—आज तुम्हारा आवेश और रण-कौशल आँखो को तृप्त करने वाला था। घोडे की लगाम मुँह मे पकडे हुए दोनो हाथो से खड्ग-सचालन करते हुए तुम मूर्तिमान् विनाश के स्वरूप जान

पड़ते थे।

पृथ्वीराज—और दादा भाई, तुमको भी मैने देखा था। तुम भी साक्षात् रुद्र के अवतार बने हुए थे।

(इसी समय पृथ्वीराज और सूरजमल के बीच में एक तीर आकर गिरता है जिसमें एक कागज बँधा हुआ है।)

सूरजमल—आश्चर्य, सूरजमल के डेरे मे इस समय शर-संचालन करने वाला कौन हो सकता है? कही तुम्हारे किसी आदमी का काम तो नहीं है पृथ्वीराज!

पृथ्वीराज—बस, डगमगा गया आपका विश्वास! यह डेरा आपका है और यह डेरा मालवा के सैनिक शिविर मे है। अतः यह शर कहाँ से आया, यह आप स्वय अधिक जान सकते है। पृथ्वीराज अनाडियों का खेल नही खेलता। उसके संकेत पर यह शर आता तो निश्चित रूप से लक्ष्य-वेध करता। हो सकता है कि किसी ने पृथ्वीराज को लक्ष्य करके यह शर संचालित किया हो।

सूरजमल—(बाण को उठाकर उसमें बँधे हुए कागज को पढ़ता है।) यह शर किसी के प्राण लेने नही आया है, अपितु किसी का सन्देशवाहक बनकर आया है।

पृथ्वीराज—(मुस्कराकर) दादा भाई की किसी विरहिणी ने मेघदूत की भाँति शर-दूत द्वारा अपना प्रेम-सन्देश भेजा है।

सूरजमल—(मुस्कराते हुए) राव सूरतान की अनिंद्य सुन्दरी राजकुमारी तारा को पाकर तुम्हारे कठोर हृदय मे भी रस का स्रोत उमड़ पड़ता है, तभी रण-भूमि में भी प्रेम-सन्देश की बात करते हो।

पृथ्वीराज—दादा भाई केवल शस्त्र-संचालन मे ही निपुण नही है, अपितु व्यंग-भरे शब्द-बाणों की बौछार करने मे भी कुशल है। पृथ्वीराज वाग्-युद्ध में अपने बडे भाई से हार मानता है। अब यह तो देखिये कि पत्र में क्या सन्देश है।

सूरजमल–(शर से पत्र अलग करके पढ़ता है।) कितनी प्रसन्नता की बात है कि मेवाड के दो परम पराक्रमी पुत्र शत्रुता को भुलाकर एकत्र हुए है। यह मिलन स्थायी हो सके तो कितना अच्छा हो। व्यक्तिगत आकाक्षाओ की पूर्ति के लिये जननी जन्म-भूमि के हृदय पर प्रहार मत करो मेवाड के वीर पुत्रो !

पृथ्वीराज–हूँ, कोई मेवाड का शुभचिंतक चाहता है कि यह गृह-युद्ध समाप्त हो जाये।

सूरजमल–समाप्त हो जाये, यह तो अच्छा है, किन्तु दोनो भाइयो के सम्मान की रक्षा करते हुए संधि होनी चाहिये।

पृथ्वीराज–पृथ्वीराज के शब्द-कोष मे संधि शब्द नही है दादा भाई ! प्रतिद्वन्द्वी का पूर्ण पराजय या अपने जीवन का बलिदान, दो ही स्थितियाँ उसे स्वीकार है, तीसरी कोई नही।

सूरजमल–अच्छी बात है, सूरजमल भी रण-भूमि मे मुँह फेरने वाला कायर प्राणी नही है। सूरजमल अपने न्यायपूर्ण स्वत्व को प्राप्त करने के लिये अन्तिम क्षण तक युद्ध करेगा।

(इसी समय एक और तीर आता है उसमें भी एक पत्र बँधा हुआ है।)

पृथ्वीराज–(शर से पत्र लेकर पढता हुआ) याद रखो, तुम्हारी राज्य-लिप्सा और अहम् भावना मेवाड के सर्वनाश का कारण बन सकती है। दो राजकुमारो का मुकुट का मोह सहस्रों मेवाडी वीरो के मस्तको का ग्राहक बनेगा। यह विनाश-लीला समाप्त होनी ही चाहिये।

सूरजमल–आश्चर्य, हमे सत्-पथ पर लाने का यत्न करने वाला यह कौन है ? यह तो निश्चित बात है कि वह शर-सचालन मे अर्जुन के समान कुशल है। वह चाहे तो हमारे प्राण भी ले सकता है, किन्तु वह निश्चित रूप से हमारा शुभचिंतक है। जो व्यक्ति

मालवा के सैनिक शिवर मे आकर सूरजमल के डेरे मे बाणो के माध्यम से अपने सदेश को भेज सकता है, वह अवश्य ही कोई शक्तिशाली व्यक्ति है।

(इसी समय तीसरा शर आता है, उसमें भी पत्र बँधा हुआ है।)

पृथ्वीराज—(शर का पत्र खोलकर पढ़ता हुआ) इन शरो के सचालक मे हम दोनो एव मालवा के सुलतान से अधिक शक्ति है। उसकी प्रार्थना ही नही, आज्ञा है कि यह रक्त की होली समाप्त की जाय। मेवाड के वीर सैनिको को भेड़-बकरो की भाँति कटवा देने का तुम्हे कोई अधिकार नही है। (पत्र पढ़ना बन्द करके सूरजमल से) दादा भाई, यह व्यक्ति वास्तव मे विचित्र है और उसके सदेश में सचाई भी जान पड़ती है।

सूरजमल—सचाई जान पड़ती है तो तुम मेवाड के राजमुकुट का मोह छोड़कर अपने बड़े भाई के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करो और रक्तपात को रोको।

पृथ्वीराज—यह तो मै पहले ही कह चुका हूँ, पृथ्वीराज सधि करना नही जानता। परिणाम शुभ हो अथवा अशुभ, जब तक सामने वाला विनीत होकर उससे प्रार्थना नही करता, अपनी पूर्ण पराजय स्वीकार नही करता, वह युद्ध से मुँह नही मोड़ सकता। दादा भाई, आप मेवाड़ के राजमुकुट के अधिकारी पृथ्वीराज के शव पर पैर रखकर ही हो सकेंगे। हाँ, इस युद्ध को रोकने का एक उपाय है।

सूरजमल—क्या ?

पृथ्वीराज—यही कि तुम अपने सहायक मालवा के सुलतान की सेना को वापिस कर दो।

सूरजमल—और मै अकेला मेवाड की सम्पूर्ण सेना से युद्ध करूँ। खूब

अच्छा सुझाव है तुम्हारा !

पृथ्वीराज—नही दादा भाई, मेवाड़ की सेना भी वापस चली जायगी। पृथ्वीराज और सूरजमल भवानी के मन्दिर मे जाकर उनके सम्मुख द्वन्द्व युद्ध द्वारा अपने भाग्यों का फैसला कर सकते हैं। जो जीवित रहे, मेवाड का युवराज हो।

सूरजमल—नही पृथ्वीराज, सूरजमल को मेवाड का राज्य-सिंहासन अवश्य चाहिये, लेकिन पृथ्वीराज के प्राण नही। सूरजमल तो मेवाड़ के वर्तमान सत्ताधारियो की सैनिक शक्ति को पराजित कर अपना स्वत्व प्राप्त करना चाहता है। यह बात नही कि वह द्वन्द्व-युद्ध से घबराता है, किन्तु उसकी धारणा है कि द्वन्द्व-युद्ध से उसकी मनोकामना पूर्ण नही होगी। सूरजमल का क्या है, वह पृथ्वीराज के खड्ग-प्रहार से चिरनिद्रा मे लीन हो जायगा तो एक बहन के अतिरिक्त उसके लिए आँसू बहाने कौन आयेगा। किन्तु पृथ्वीराज अपने माता-पिता का एकमात्र अवशेष पुत्र है। सूरजमल की तलवार से यदि उसे ससार से कूच करना पडा तो उसके माता-पिता के हृदय पर क्या बीतेगी, इसी कल्पना से ही उसके प्राण कांप उठते है।

पृथ्वीराज—इतनी दया-माया है अभी दादा भाई मे !

सूरजमल—नही, सूरजमल मनुष्य थोडे ही है, उसमे हृदय के स्थान पर एक लोहे का टुकडा रखा हुआ है। मेवाड़ के राजवश ने सूरजमल के धडकते हुए हृदय की आवाज को सुनना चाहा होता, उसका अर्थ समझने का यत्न किया होता, तो आज यह रास्ता पकडना ही क्यो पड़ता ?

पृथ्वीराज—दादा भाई, आपके वीर किन्तु कोमल हृदय को मै कुछ-कुछ समझ सका हूँ, किन्तु फिर भी अब हम मार्ग नही बदल सकते।

सूरजमल–ठीक है, समय का यही आदेश है। हम समय के हाथ के खिलौने है।

पृथ्वीराज–ठीक है, अब मै आपसे बिदा लेता हूँ। कल समर-भूमि में फिर भेट होगी।

सूरजमल–चलो, थोड़ी दूर तक तुम्हे पहुँचा आऊँ, मुझे यह भी पता लगाना है कि ये शर मेरे डेरे मे किसने सचालित किये। वह या तो हमारी सेना का ही कोई व्यक्ति है या छिपकर कोई बाहर से आया हुआ है।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(स्थान—समरभूमि में महाराणा रायमल का डेरा। समय—दिन का तीसरा प्रहर। महाराणा आहत अवस्था में लेटे हुए है। राजयोगी उन्हे औषधि पिला रहे हैं। दो मेवाड़ी सैनिक पहरा दे रहे हैं। राजयोगी औषधि पिलाकर पात्र पास में रखी हुई एक चौकी पर रखते हैं। महाराणा आँखें खोलकर इधर-उधर देखते हैं।)

महाराणा रायमल—मैं यहाँ ?

राजयोगी—हाँ, महाराणाजी, आप अपने जीवन की उपेक्षा कर सकते है, किन्तु मेवाड को अभी आपकी छत्रछाया की अत्यन्त आवश्यकता है। आपको आहत एव मूर्च्छित देखकर आपके हाथी को महावत रणभूमि के बाहर ले आया। फिर आपको होश मे लाने के लिए डेरे मे लाकर उपचार करना आवश्यक था ही।

महाराणा रायमल—जानता हूँ मेवाडियो का मुझ पर अत्यन्त मोह है, किन्तु रणभूमि से किसी क्षत्रिय को विमुख करना उसकी आत्मा को कष्ट देना है।

राजयोगी—यह ठीक है, लेकिन देश के हित के लिये अपनी आत्मा को थोडा कष्ट देना अनुचित नही है महाराणा जी। आपके नेतृत्व ने मेवाड के खोते हुए गौरव की रक्षा की है, किन्तु आपके अविरत प्रयत्नो के होते हुए भी अभी तक मेवाड की नैया मंझधार मे है। इसलिये नैया के खेने वाले को धारा मे विलीन होते हुए देखना और उसे बचाने का यत्न न करना, उस नैया मे बैठे हुए लोगो के लिये आत्महत्या के समान है। आपका व्यक्तित्व मेवाड की बिखरी हुई शक्तियो को एक सूत्र में बाँधने वाला है। आप इस

आयु में कालभैरव का रूप धारण कर देश के शत्रुओं से लोहा लेते है, यह आपकी अपने देश के प्रति विशेष अनुकम्पा है; किन्तु सच पूछो, तो हम चाहते है कि आप अब अपने जीवन को सकट में न डाले ।

महाराणा रायमल—राजयोगी जी, राजपूत युद्ध करने के लिये कभी बूढा नही होता । जो सेनानायक अपने आपको युद्ध की ज्वाला से अलग रखकर सेना का नेतृत्व करता है, उस पर सेना का विशेष विश्वास नहीं होता । यदि अपने आपको देश का जन-नायक अथवा राजा कहाने वाला अपने प्राणों का मोह रखकर रणभूमि में जाने से मुँह मोड़ता रहे तो उसके संकेत पर उसके सैनिक अपने जीवन की बलि देने का उत्साह कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं ? मेवाड़ के महाराणाओं के सकेत पर आज तक जो सहस्र-सहस्र मेवाड़ी योद्धाओ ने प्राणों की आहुति देकर मेवाड़ की कीर्ति की ध्वजा उन्नत की है वह केवल इस कारण कि जब भी सकट की अवस्था आई उस समय मेवाड़ का छत्रधारी प्राणो की बाजी लगाने में सबसे आगे रहा ।

राजयोगी—निश्चय ही मेवाड़ के महाराणाओं ने अपनी गौरवपूर्ण वीरता से भारत भूमि को गौरवान्वित किया है । युग-युग तक उनके यश की गाथाएँ इस भूमि के वासियों को वीर भावनाओ से भरती रहेंगी ।

महाराणा रायमल—इस समय तो आप मेवाड के महाराणाओं की स्तुति करने मे चारणों से भी बाजी मार ले गये । अपने पूर्वजो की वीरता से मै भी अनुप्राणित होता हूँ, किन्तु मुझ मे उन जैसी शक्ति कहाँ है । मैं तो उनके पद-चिह्नो पर चलने का यत्न ही कर रहा हूँ । आप जैसे गुरुजनो का आशीर्वाद और सहयोग ही मुझे थोडा-बहुत सफल बना सका है ।

राजयोगी—नही महाराणा जी, यदि आपमे ही कर्तव्य-भावना, विवेक-बुद्धि और वीरता का अभाव होता तो मेवाड की स्वाधीनता का दीपक कभी का बुझ जाता।

महाराणा रायमल—(शैया पर बैठते हुए) मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि आप समर-भूमि की ज्वाला में अपने जीवन को झोंकने के लिये यहाँ कैसे आ धमके? आपका स्थान रणभूमि नही, अपितु देवमन्दिर है। ज्ञान और भक्ति की ज्योति को मेवाडियो के हृदय मे प्रकाशित रखने के लिये यह आवश्यक है कि आप जैसे महात्माओ को युद्ध की लपटो से अलग रखा जाये।

राजयोगी—महाराणा जी, आपकी मेरे प्रति जो ममता है, वही यह बात कह रही है, किन्तु वाछित यह है कि जिस समय देश पर संकट आवे प्रत्येक व्यक्ति समर-क्षेत्र मे कर्तव्य-पालन के लिये आगे बढे। इससे आप भी सहमत होगे। मेवाड़-भूमि का पुत्र होने के नाते मुझे भी अपने कर्तव्य का पालन करना आवश्यक जान पड़ा। रण की देवी भवानी का उपासक हाथ मे असि धारण कर लोहा न भी ले सके, तो भी आहत साहसी शूरों की सेवा तो कर ही सकता है। आप जानते है कि मै थोडा चिकित्सा का ज्ञान भी रखता हूँ।

महाराणा रायमल—(खड़े होते हुए) हाँ, हाँ आप चिकित्सा करते है। केवल शरीर की ही नही, मन और आत्मा की भी। आपके अमृत-वचनो से चित्त स्वस्थ होता है।

राजयोगी—महाराणा जी, आप इस समय विश्राम ही करे। इस प्रकार अचानक शैया से उठ खडा होना हानिकर है।

महाराणा रायमल—विश्राम! मेवाड के महाराणा के लिये विश्राम असम्भव है। जिस समय सहस्रो मेवाडी वीर रणभूमि मे अपने

प्राणों की आहुतियाँ दे रहे है, उस समय मेवाड का महाराणा कायर बनकर अपने डेरे मे मुँह छिपाये बैठा रहे, यह नही हो सकता। मेवाड़ के महाराणा के शरीर का अन्तिम रक्त-बिन्दु भी अपने साथियो के रक्त मे सम्मिलित होने के लिये लालायित है। (सैनिक से) मेरे लिये घोडा मँगवाओ।

(सैनिक राजयोगी की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखता है।)

महाराणा रायमल— (सैनिक से) राजयोगी से क्या पूछते हो, इनका शासन धर्म-मन्दिर मे चलता है। यह समर-भूमि है। यहाँ मेरी आज्ञा का पालन करना होगा।

सैनिक—महाराणाजी, युवराज की आज्ञा है कि होश आने पर भी आपको समर-क्षेत्र मे न आने दिया जाय।

महाराणा रायमल—तो अब मेवाड के सैनिक युवराज की आज्ञा का पालन करेंगे, महाराणा की आज्ञा का नही।

राजयोगी—महाराणा जी की आज्ञा की अवज्ञा करने का दुस्साहस और धृष्टता कोई मेवाड़ी सैनिक तो क्या, मेवाड-भूमि का कोई भी सपूत नही कर सकता, किन्तु आपसे नम्र निवेदन करने का अधिकार तो आपकी सन्तान-तुल्य प्रजा को है ही। युद्ध-भूमि की चिन्ता करने की आपको इस समय आवश्यकता नही है। आपके परम पराक्रमी पृथ्वीराज के नेतृत्व में मेवाडी सैनिक अपने कर्तव्य का पालन कर रहे है। वे प्रलयंकर शंकर के गण के समान विध्वंस का खेल खेल रहे है।

महाराणा रायमल—मुझे अपने मेवाड़ी सैनिको के अप्रतिम पराक्रम पर अभिमान है राजयोगी जी ! बिना शकर के शंकर की सेना कैसी ? इस समय मेरा स्थान वही है, जहाँ सहस्रों तलवारे आकाश में चकाचौध पैदा कर रही हैं। जाओ सैनिक, विलम्ब न करो, मेरा घोड़ा तैयार कराओ।

राजयोगी—यदि महाराणा जी समर-क्षेत्र मे जाना ही चाहते है तो अश्व पर नही, अपने गौरव के अनुकूल एव इस समय की आहत अवस्था के लिये सुविधाजनक हाथी की सवारी पर ही जायेंगे। (सैनिक से) जाओ, महाराणा जी के लिये हाथी तैयार कराओ।

(सैनिक का प्रस्थान। इसी समय सैनिक-वेश में तारा प्रवेश करती है। उसके हाथ में रक्त-रंजित दुधारा है। दूसरे हाथ में ढाल है। तारा आकर राजयोगी और महाराणा के चरणो पर शीश झुकाती है।)

महाराणा रायमल—बेटा, तुम्हे इस वेश मे देखकर मेरी एक आँख रोती है और एक हँसती है।

तारा—रोती क्यो है महाराणा जी ?

महाराणा रायमल—रोती इसलिये है कि मेवाड की कुल-वधुओ को हिंसा का ताण्डव करना पड रहा है। मेवाड़ की नारियो को अपने पुत्रो, भाइयो, पतियो एव पिताओ के पुरुषार्थ पर मानो विश्वास नही रहा।

तारा—ऐसा क्यो कहते है महाराणाजी, भारत की क्षत्राणियाँ सदा से ही प्रत्येक क्षेत्र मे अपने स्वामी की सहयोगिनी रही है, मृत्यु को वे माँ की गोद के समान सुखद समझती रही है। हँसते-हँसते जौहर की जाज्वल्यमान ज्वाला मे जीवन की आहुति देने वाली पद्मिनी जैसी वीरागनाएँ इसी मेवाड़-भूमि मे जन्मी है। स्वर्गीय महाराणा समरसिंह की पत्नी तेजस्विता की प्रतिमूर्ति, कर्मदेवी, जिन्होंने दिल्ली के बादशाह कुतबुद्दीन के विरुद्ध मेवाडी सेना का नेतृत्व कर अम्बर के निकट उसे पराजित किया था, इसी मेवाड की महान् महिला थी। महाराणाजी, आपकी पुत्रवधू कुछ नया पराक्रम नही दिखा रही है, केवल मेवाड की परम्परा का पालन कर रही है।

महाराणा रायमल--तभी तो मैने कहा, मेरी एक आँख हँस रही है। जिस देश की नारियाँ भी हाथों में शस्त्र लेकर देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये समर-भूमि में चण्डी का रूप धारण करती हैं, उसे कोई भी दास नही बना सकता।

राजयोगी--तारा, आज तुम्हे इस रूप में देखकर भवानी के पुजारी की आँखे तृप्त हो गईं। जान पड़ता है, मेवाड़ के मान की रक्षा करने के लिये मदिर में बसने वाली भवानी की प्रतिमा सजीव होकर चली आई है। मै देवी के चरणों में प्रणाम करता हूँ।

तारा--राजयोगी जी; प्रशंसा के शब्द सुनकर कौन पुलकित नही होता, किन्तु मेरा आपसे निवेदन है कि आपकी माया ने पत्थर के सम्मुख मानव का मस्तक झुकवाया है। अपनी वह माया मुझ पर न चलावे। मानव को अपनी ही शक्ति पर विश्वास करने दो। देवी-देवता के भरोसे रहने पर मानव का पुरुषार्थ पंगु हो जाता है और आये दिन सोमनाथ के विध्वस का दृश्य देखने को मिलता है।

राजयोगी--देवता पुरुषार्थ को ही पुरस्कृत करते है, अकर्मण्य और कायर को नही। आस्तिकता का अर्थ अकर्मण्य नही है। सोमनाथ का विध्वंस तो अंधविश्वासी, अकर्मण्य और कायर पुरुषों को एक चेतावनी मात्र था। विधाता के उस सुगम्भीर सकेत को हमे वास्तविक अर्थो में समझना चाहिये।

महाराणा रायमल--निश्चय ही, भाग्य-लिपि का अदृश्य लेखक मतवाला नही है बेटी! अज्ञात, अनन्त, अलौकिक शक्ति से वरदान पाने के लिये मानव को तप करना पड़ता है। बलिदान देना पड़ता है। जीवन का कठोर सघर्ष भी तप है। जिसमे तप करने की, बलिदान देने की शक्ति का लोप हो जाता है, उस पर किसी न किसी रूप मे अदृश्य का अभिशाप अवतरित होता है।

तारा—प्रसन्नता की वात है कि मेवाड कठिन परीक्षाओ के ताप में तपकर सुदृढ होता गया है। विपरीत परिस्थितियों के आँधी-तूफान मे उसका साहस पर्वत के समान अडिग रहता रहा है। आज भी मेवाड़ी सेना शत्रुदल से संख्या में थोडी होते हुए भी मेवाड़ के झडे को ऊँचा कर रही है।

महाराणा रायमल—मालवा और गुजरात की सेनाओ से मेवाड़ ने अनेक वार लोहा लिया है। जिस प्रकार किसी पारावार के ज्वार की उत्ताल तरगे चट्टानी तटो से टकरा-टकराकर लौट जाती है, उसी प्रकार इस बार भी शत्रु का अभिमान चूर्ण होगा।

राजयोगी—यह तो ठीक है महाराणाजी, किन्तु एक विभीषण ने लंका की अतुल शक्ति को विफल कर दिया था। सूरजमल का मेवाड़ के प्रति विद्रोह चिन्ता का कारण अवश्य है।

तारा—सूरजमलजी को मैने युद्ध करते देखा है। वह भीमकाय मानव रूप मे चलती-फिरती चट्टान, कुम्भकर्ण का अवतार, हाथों में विद्युत् की गति लिये हुए जिधर से तलवार चलाते गुजरते है, उधर की सेना काई-सी फट जाती है। प्राणो का मोह त्यागकर वह अपने सजातीय सैनिकों से युद्ध कर रहे है।

महाराणा रायमल—किन्तु, मेरा पृथ्वीराज सूरजमल से कम नही है। सूरजमल व्याघ्र है तो वह केसरी है।

तारा—महाराणाजी, यह आपके पुत्र का ही साहस है, जिसने सूरजमल जी के वेग को रोक दिया है। दोनो भाई दो वलवान हाथियो की भाँति एक-दूसरे पर टूट पडे थे। वह दृश्य अपूर्व था। खड्ग-संचालन मे दोनो एक-दूसरे को नीचा दिखाने का यत्न करते, किन्तु दोनो एक-दूसरे के प्रहारो को विफल कर देते थे। मेरा जी चाहता था, वही खडी रहकर मेवाड़ के दो राजपूतो का, दो भाइयो का घोर संग्राम देखती रहूँ।

राजयोगी–तो तुम यहाँ चली क्यों आई ?

तारा–युवराज ने आज्ञा दी कि मै महाराणाजी की सँभाल करूँ, साथ-साथ ही दोनों भाइयों का संग्राम देर तक चल भी नही सका, सूरजमलजी ने उनसे टकराते रहना व्यर्थ समझकर अपने घोड़े को वहाँ से हटा लिया।

महाराणा रायमल–तो पृथ्वीराज ने सूरजमल का पीछा नही किया ?

तारा–नही, क्योंकि अपने प्राणों से प्रिय महाराणाजी के हाथी को रण-भूमि में न देखकर मेवाड़ी सेना मे एक निराशा की लहर दौड़ गई थी। उस निराशापूर्ण वातावरण को दूर करना आवश्यक था। उन्होंने सामन्तों को एकत्र कर उन्हें महाराणाजी के सुरक्षित होने का समाचार दिया और उनके द्वारा सम्पूर्ण सेना में पहुँचाया। उसके पश्चात् जोर से रण-भेरी बजवाई एव अपने चुने हुए साथियो को लेकर प्रबल वेग से शत्रु के हरावल को चीरते हुए वे मध्य तक चले गये।

राजयोगी–पृथ्वीराज वास्तव में वीरता मे अद्वितीय है। फिर क्या हुआ ?

तारा–वह चारो ओर से शत्रुओ से घिर गये, किन्तु उनके शरीर पर किसी शत्रु की तलवार का पहुँच सकना असम्भव था। जैसे मृगो में सिह सहार-लीला करता हुआ निर्द्वन्द घूमता है, उसी प्रकार वह शत्रु-समूह मे विचरण कर रहे थे। यह दृश्य देखकर मेवाड़ी सैनिकों में उत्साह का तूफान उमडा, वे भी प्रबल वेग से शत्रु पर टूट पड़े।

महाराणा रायमल–इस समय रण-भूमि में मेरा पहुँचना आवश्यक है। मुझे देखते ही सेना को नवीन बल प्राप्त होगा। दूसरी बात यह भी है कि पृथ्वीराज पर इस समय अनुशासन रखने की भी आवश्यकता है। कही आवेश मे आकर वह इतना आगे न बढ जाय

कि अपनी सेना से सर्वथा अलग हो जाय। मुझे जाना चाहिये। तुरन्त ही जाना चाहिये। मेवाड के कुल-दीपक की सुरक्षा के लिये मुझे तुरन्त जाना चाहिये।

(नेपथ्य में 'मेवाड़ की जय' 'महाराणा रायमल की जय' 'युवराज पृथ्वीराज की जय' का नाद सुनाई देता है।)

राजयोगी—सुना महाराणाजी, युवराज शत्रु-सेना को परास्त कर मेवाड़ की कीर्ति को चार चाँद लगाते हुए चले आ रहे हैं।

महाराणा रायमल—हे भगवान् एकलिंग, तुम्हारी ही अपार अनुकम्पा से आज फिर मेवाड के यश की रक्षा हो सकी है! तुम्हारे तृतीय नेत्र की ज्योति की एक-एक किरण प्रत्येक मेवाडी के हृदय में समाविष्ट होकर उसे चिर-प्रज्वलित रखती है।

(पृथ्वीराज का प्रवेश और राजयोगी के चरणों को छूना)

राजयोगी—(मस्तक पर हाथ रखते हुए) तुम्हारी कीर्ति अमर हो पृथ्वीराज!

(पृथ्वीराज महाराणा के चरण छूता है।)

महाराणा रायमल—बेटा, (पृथ्वीराज को गले लगा लेते हैं, उनकी आंखों में आनन्दाश्रु भर आते है और कण्ठ गद्गद् हो जाता है।) आज तुमने मेवाड़ की लाज रखी। आज मेरा हृदय आनन्द से फटा जा रहा है। राम जब लका जीतकर आये थे तब कौशल्या को जैसा आनन्द प्राप्त हुआ था वैसा ही आज मुझे प्राप्त हो रहा है। आज मेवाड़-भूमि अपने सपूतो का विक्रम देखकर फूली नही समाती। पिताजी ने चित्तौड मे जो कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किया है, आज उसके गर्व का कोई ठिकाना नही है। आज चित्तौड दुर्ग का प्रत्येक शिलाखण्ड आनन्दातिरेक से रोमाञ्चित हो उठा होगा।

राजयोगी—किन्तु पृथ्वीराज, मेवाडी सेना को सहसा इतनी जल्दी विजय प्राप्त कैसे होगई? सूरजमल सरलता से मैदान छोडने वाला

व्यक्ति नहीं है।

पृथ्वीराज—हाँ, सूरजमल सरलता से हार मानने वालो में नही है। हमारी विजय तो निश्चित थी, किन्तु वह अधिक बलिदान माँगती। आज किसी रहस्यमयी अज्ञात शक्ति ने हमारी विजय सरल कर दी। दोनों सेनाएँ घमासान युद्ध में गुँथी ही थी कि शत्रु-सेना पर किसी ने पीछे से अप्रत्याशित बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी। फिर क्या था, शत्रु-सेना में भगदड़ मच गई। शत्रु-सैनिक शरद्कालीन बादलों की भाँति तिरोहित हो गये।

महाराणा रायमल—(राजयोगी से) जान पड़ता है आपने ही गुप्तरूप से यह आयोजन किया था।

राजयोगी—महाराणाजी, मुझमें इतनी संगन-शक्ति, सूझ-बूझ और रण-चतुराई कहाँ ? जान पड़ता है, मेवाड़ पर कृपा रखने वाली रणचण्डी ने यह खेल खेला है।

(नेपथ्य में 'मेवाड़ के महाराणा की जय' का तुमुल नाद गूंजता है।)

पृथ्वीराज—मेवाड़ की विजयी सेना महाराणा जी के दर्शन चाहती है।

महाराणा रायमल—मै भी अपनी वीर विजयी सेना को देखकर अपने नेत्रों को सफल करना चाहता हूँ और चित्तौड़ पहुँचकर सबको यथायोग्य पुरस्कृत करूँगा।

(महाराणा प्रस्थान करते हैं, उनके पीछे सब जाते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—माडूगढ में मालवा के सुलतान के अतिथि-रूप में सूरजमल जिस भवन में ठहरा हुआ है उस भवन के और प्राकार के मध्य का खुला मैदान। समय—सन्ध्या। ज्वाला अकेली किसी की प्रतीक्षा में खड़ी है। खाली समय को व्यतीत करने के लिये एक गीत गा रही है, जिससे उसके अन्तर की भावनाएं व्यक्त होती हैं।)

ज्वाला—(गीत)

प्रसूनो को जला दूंगी
प्रलय की आग बनकर मै।

जगत से प्यार के दो
बोल भी तो मिल नही पाये।
नरक जग को बना दूंगी,
घृणा का राग बनकर मै।

प्रसूनो को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मै।

पिलाया विप मुझे जग ने,
वही तो मै उगलती हूँ।
डसूंगी अब मनुजता को
भयानक नाग बनकर मै।

प्रसूनो को जला दूंगी,
प्रलय की आग बनकर मै।

लहू का घूंट पी-पीकर,
हुआ पागल हृदय मेरा।

धरा को लालिमा से अब
भरूँगी फाग बनकर मै।
प्रसूनो को जला दूँगी,
प्रलय की आग बनकर मै।

(सूरजमल का प्रवेश जो श्रांत-क्लांत एवं आहत अवस्था में है।)

सूरजमल—हम स्वयं ही लालसाओं की लपलपाती हुई लपटों में भस्म हो जायेगे ज्वाला ! किसी को भस्म करने का हमारा दुःस्वप्न कभी चरितार्थ नही होगा।

ज्वाला—अब परिणाम के सम्बन्ध में सोचना ही व्यर्थ है। प्राणों मे जिस प्रतिहिसा की ज्वाला ने अपना निवास बना लिया है उसे प्राणों से निकाल देने का कोई उपाय नही है, और उसे प्राणों में पाले हुए जीवन का पथ स्वाभाविक रूप से चल सकना भी असंभव है। संघर्ष से मुँह मोड़ लेने से तो मरने के पहले ही मर जाना पड़ता है। मृत्यु का जीवन जीना तुम्हारी सहोदरा ज्वाला को स्वीकार नही है। अगर तुम थक गये हो तो भी ज्वाला अभी थकी नही है। उसकी सग्राम करने की साध अभी पूरी नही हुई।

सूरजमल—थकना तो सूरजमल भी नहीं जानता, किन्तु सत्य को अस्वीकार करने से भी कोई लाभ नही है। पृथ्वीराज के प्रचण्ड पराक्रम ने हमें पूर्णत. परास्त कर दिया है एवं मेवाड़ के सैनिकों में उसने नई प्रेरणा भर दी है। मेवाड़ के राजपूत उसे इष्टदेव के समान वन्दनीय मानने लगे है। उसके संकेत पर किसी भी क्षण वे अपने प्राणो की बाजी लगाने को प्रस्तुत हैं। मेवाड़ को ऐसा नेतृत्व प्राप्त होना सौभाग्य की बात है।

ज्वाला—पृथ्वीराज की वीरता मे मुझे किसी प्रकार का सदेह नही है। निश्चय ही उन्होने गहलोत वश की परम्परा को पाला है, किन्तु

दादा भाई, तुम्हारी धमनियो मे भी भगवान् राम के वंशजो का रक्त प्रवाहित है। तुमने पृथ्वीराज से कम पराक्रम नही दिखाया। मै भी तो रणभूमि मे एक सैनिक के रूप मे उपस्थित रही थी। मैने तुम्हारा और पृथ्वीराज का द्वन्द्व देखा था, मानो कुरुक्षेत्र मे अर्जुन और कर्ण अपने रण-कौशल की परीक्षा कर रहे हो। आज तुम्हारे हृदय मे अपने आपको हीन समझने की मनोवृत्ति क्यो उपस्थित हुई ?

सूरजमल—सूरजमल पृथ्वीराज से साहस, शक्ति एव रण-कौशल मे हीन है, ऐसा तो उसने कभी अनुभव नही किया, लेकिन ज्वाला, उसे मेवाड के राजसिहासन पर आसीन हो सकने की कोई सम्भावना दिखाई नही देती। मै समझता था, मेवाड के सामन्तो मे कुछ हमारे पृष्ठ-पोषक है। उनमे से कुछ इस युद्ध मे तटस्थ भी रहे, लेकिन तुम जानती हो, उदय होते हुए सूर्य को सभी नमस्कार करते है। उधर देखो, अस्तगत रवि हमारे भाग्य की भविष्यवाणी कर रहा है। ज्वाला, डूबते हुए सूर्य को कोई प्रणाम नही करता।

ज्वाला—क्षितिज के पार अधकार है या प्रकाश, इसे कौन जानता है ? पृथ्वीराज का उद्दण्ड पराक्रम पुच्छल तारे के समान है, जो अपने महा तेज से कुछ क्षणो के लिये ससार को चकित कर देता है, किन्तु कुछ क्षणो के पश्चात् वह तिरोहित भी हो जाता है। मुझे विश्वास है कि पृथ्वीराज का आवेश ही उसे जीवन-लीला को असमय मे समाप्त करने को वाध्य करेगा। और तब सूरजमल के भाग्य-रवि का उदय होगा। उदय के पश्चात् अस्त और अस्त के पश्चात् उदय, यह प्रकृति का नियम है।

सूरजमल—किन्तु, वहन, मान लो भारत मे जो विदेशी शासक है उनकी कृपापूर्ण सहायता से मै मेवाड का महाराणा बन भी गया, तब

भी क्या मेवाड़ के जन-मानस मे स्थान पा सकूँगा ? कदापि नही ! आज महाराणा रायमल और पृथ्वीराज के प्रति मेवाड़ के जन-साधारण का अटूट विश्वास है और उनका विरोध करने वाले के प्रति चाहे वह न्याय के पथ पर हो, उनके हृदय में अत्यन्त घृणा और रोष का भाव है। राजा बन जाने पर भी मै प्रजा के हृदय से इस घृणा के भाव को दूर नही कर सकूँगा। ज्वाला, जिस राजा से प्रजा घृणा करती हो उसकी सत्ता बालू के दुर्ग के समान है। जरा-से धक्के से वह धराशायी हो जाता है। हमारे सामने पिताजी का ही उदाहरण उपस्थित है। वह अपने पिता की हत्या कर मेवाड का राज्य-सिहासन हस्तगत करने में सफल हुए, किन्तु जनसाधारण एव न्यायप्रिय सामन्तो ने उन्हे मेवाड़ का महा-राणा स्वीकार नही किया। अपने समर्थको की सख्या बढ़ाने के लिये उन्होने अनेक व्यक्तियों को जागीरें दी, अनेक जागीरदारो को लगभग स्वतन्त्र कर दिया, मेवाड़ राज्य के इलाके मालवा के सुलतान, गुजरात के बादशाह और दिल्लीपति को भेट कर उनकी सहायता प्राप्त की, किन्तु अन्त मे राज्य-लिप्सा की ज्वाला में उन्हे स्वयं ही भस्म हो जाना पड़ा।

ज्वाला—क्योंकि उनके पक्ष मे कोई नैतिक आधार नही था। स्वयं उनके पुत्र और पुत्री ने उनका विरोध किया। किन्तु हमारे मामले में यह बात नही है। मेवाड़ के राजमहल ने सूरजमल के साथ अन्याय किया है और राजमहल के अन्तःपुर ने ज्वाला का अप-मान किया है। प्रतिशोध लेना मानव का कर्तव्य है दादा भाई ! तुम्हारे मन मे दुविधा हो सकती है, लेकिन तुम्हारी बहन का मन तो चट्टान की भाँति दृढ है। वह दुविधा मे नही पड़ सकती। उसे मिटना होगा तो मिट जायगी। इतिहास उसे कुल के साथ वैर करने वाली कहे तो कह ले, किन्तु यह न कह सकेगा कि उसने

अपमान को चुपचाप सह लिया। गधे की भाँति अपमान की मार सहते हुए जीवन के पथ पर गर्दन झुकाये चले जाना मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है।

सूरजमल–गृह-युद्ध की ज्वाला का कोई अन्त नही है। ज्वाला! यह सर्वनाश की होली शताब्दियों तक, पीढी-दर-पीढ़ी खेली जा सकती है।

ज्वाला–हाँ भैया, इस होली की ज्वाला को समाप्त भी नही होने देना है। होलिका अथवा प्रह्लाद दोनो मे से एक को जलकर क्षार होना होगा।

(सहसा यमुना का प्रवेश। वह इस समय अति मूल्यवान एवं आकर्षक वस्त्राभूषणो से सुसज्जित है, जिससे उसके सहज सौंदर्य को चारचांद लग गये हैं।)

यमुना–राजकुमारी को यमुना प्रणाम करती है।

ज्वाला–बहुत बड़ी उम्र है तेरी। मै प्रतीक्षा ही कर रही थी।

सूरजमल–(ज्वाला से) यह कौन है?

ज्वाला–नही पहचाना तुमने। अच्छा हुआ, पहले पहचान पाते तो सम्भवतः संग्राम मे तुम्हारा मन नही लग पाता।

सूरजमल–ज्वाला, तुझे अपने बडे भाई पर आक्षेप करते हुए लज्जा नही आती? कम से कम एक भद्र महिला का सम्मान तो तुझे करना ही चाहिये।

ज्वाला–किन्तु, यदि यह भद्र महिला इस प्रकार के आक्षेपो से प्रसन्न होती हो तो इसमे आपत्तिजनक बात ही क्या हो सकती है? जिस नारी का जीवन पुरुषो का मनोरजन करना ही हो, उसके प्रति भद्रकुल की नारी के समान सम्मान प्रदर्शित करना मूर्खता है।

सूरजमल–बहन, तुम अपने ऊपर जरा-से व्यग और अविश्वास की बात

को सुनकर इतनी तिलमिला उठी थी कि मेवाड़ में तुमने भयकर गृह-कलह को प्रज्वलित कर दिया। फिर तुम नारी के स्वाभिमान को समझने में भूल क्यों करती हो ? हो सकता है, इस नारी का जीवन किसी कारण पुरुषों की वासना का खिलौना बन गया हो, फिर भी हमें उसके सम्मान की रक्षा करनी चाहिये। मै पूछता हूँ, यह नारी है कौन !

ज्वाला—यह भिखारन है, जिसे मैने दिल्ली मे बन्दिनी बनाया था। एक बार तुम इसे देख चुके हो, किन्तु जब-जब यह तुम्हारी आँखों के सामने आई है, नये-नये रूप मे आई है। वे रूप इसके स्वाभाविक रूप नही थे। दिल्ली के राजदरबार में जब इसकी कला, सौदर्य और यौवन के प्रदर्शन ने मुझे प्रथम बार चकित किया था, तुम अनुपस्थित थे, इसलिए इसके स्वाभाविक स्वरूप से अपरिचित हो। आज इसे इसके अभिराम रूप मे देखकर तुम चकित हो गये हो।

सूरजमल—तो यह वही दिल्लीपति की गुप्तचर है ?

ज्वाला—हाँ, लेकिन अब यह ज्वाला की अन्तरंग सखी है। यह मेरा ब्रह्मास्त्र है। जब तुम भी अपने शस्त्र छोड़ देने का विचार कर रहे हो, तब ज्वाला को इसी शस्त्र का प्रयोग करना आवश्यक होगा।

सूरजमल—किस पर ?

ज्वाला—और किस पर, पृथ्वीराज पर।

सूरजमल—शंकर का तप भग करने के प्रयास में मदन को भस्म होना पड़ा था। पृथ्वीराज किस धातु का बना है, आश्चर्य है, इसे समझने में तू भूल करती है।

यमुना—मुझे खेद इस बात का है राजकुमार, कि उस उद्दण्ड पुरुष को अपने चरणों पर झुकाने की साध मै पूर्ण न कर सकूंगी।

ज्वाला–क्यो ? क्या तूने मेरा साथ न देने का निश्चय किया है ?

यमुना–नही राजकुमारी, नरक की ज्वाला मे भी आपके साथ ही जलने के लिये मै वचन-बद्ध हूँ। छल करना जिन नारियो का स्वभाव बन जाता है, उनके भी कुछ नैतिक नियम होते है। राजकुमारी, आपसे मेरा जीवन-मरण का सम्बन्ध हो गया है। यह बात अलग है कि आप ही मुझसे छुटकारा चाहती हो।

ज्वाला–मै तो तुझसे छुटकारा नही चाहती, किन्तु यह भी याद रख कि यदि तूने मुझसे छुटकारा चाहा तो अपने जीवन से भी छुट-कारा लेना पडेगा।

सूरजमल–फूल को तलवार से काटने मे क्या आनन्द प्राप्त होगा ज्वाला ?

ज्वाला–(मुस्करा कर) दादा भाई, मेरे एक रसीले वाक्य से आप तिल-मिला उठे थे, किन्तु मै देखती हूँ कि रूप की किरणे तीर की तरह तुम्हारे अन्तर्प्रदेश मे प्रवेश कर रही है, तभी नारीदेह मे तुम्हे फूल के दर्शन होने लगे है। (यमुना से) मुझे विश्वास होता है कि जो नारी सूरजमल के हृदय को कोमल भावनाओ से भर सकती है, वह पृथ्वीराज पर भी जादू चला सकती है।

यमुना–किन्तु पृथ्वीराज के पास पहुँच सकने की शक्ति यमुना मे नही है।

ज्वाला–मेवाड़ का राजकुल कला का प्रेमी, प्रशसक और साधक रहा है। महाराणा कुम्भा भारत के प्रसिद्ध कला-प्रेमी और कलासाधक थे। उनका स्वभाव मेवाड़ के राजकुल मे कुछ न कुछ बना हुआ है। तू अपने रूप पर अविश्वास कर सकती है, किन्तु तुझे विश्वास होना चाहिए कि तेरी कला तो तुझे पृथ्वीराज के पास पहुँचा सकती है।

यमुना–राजकुमारी, पचभूत से निर्मित मनुष्य का शरीर छोड़े बिना मै

अपनी कला को लेकर पृथ्वीराज के पास नही पहुँच सकती।

सूरजमल—क्यों, क्या वह देवता की श्रेणी में है ?

यमुना—हाँ राजकुमार, अब वह देवलोकवासी है।

सूरजमल—क्या कहा तुमने, अभी-अभी तो उसने अपने पौरुष की चकाचौंध से देवताओ को भी चकित किया था। अभी तो उसकी तलवार का रक्त भी नही सूखा होगा। अभी तो उसकी तलवार से हुए मेरे घाव भी नही भरे है।

यमुना—राजकुमार, भाग्य के खेल आश्चर्य मे डाल देते है। बात विश्वास करने योग्य नही है, किन्तु यह सत्य है कि अब पृथ्वीराज इस संसार में नहीं है।

सूरजमल—क्या हुआ उसे ?

यमुना—राजकुमारी की आज्ञा पाकर मुझे अपने जीवन का एक बहुत ही विस्मयकारक नाटक खेलना पड़ा। मै सिरोही नरेश और उनकी रानी, मेवाड़ की राजकुमारी, पृथ्वीराज की सहोदरा आनन्ददेवी के मध्य सेज का काँटा बनकर गई थी। मै अपने उद्देश्य में सफल हुई। सिरोही-नरेश ने अपनी रानी की अवहेलना की और आनन्ददेवी आखिर गहलोत वंश की पुत्री है, वह अवहेलना को कैसे सहती ? बात बिगड़ती ही गई।

ज्वाला—मैने भी पृथ्वीराज के कानो मे सिरोही-नरेश द्वारा आनन्ददेवी के प्रति दुर्व्यवहार की भनक डाल दी थी।

यमुना—इस युद्ध से अवकाश पाते ही पृथ्वीराज ने अपने बहनोई सिरोही-नरेश को घर दबाया। स्वयं आनन्ददेवी ने अपने सुहाग की भीख न माँगी होती तो पृथ्वीराज सहोदरा की माँग का सिन्दूर पोंछ डालता।

ज्वाला—किन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का है कि उसने तुझे कैसे जीता छोड़ दिया ?

यमुना–पृथ्वीराज मुझे पा जाता तो निश्चय ही मेरे शरीर के हजारो टुकडे कर डालता, किन्तु यमुना तो भुस मे अंगारे डालकर अंतर्धान हो गई।

सूरजमल–निश्चय ही, तूने काम ऐसा ही नीचतापूर्ण किया है, वल्कि तुझे तो अधमरा करके शिकारी कुत्तो के आगे छोड देना चाहिये।

यमुना–तो यह साधना पूरी कर लीजिये।

सूरजमल–जो सवका न्याय करता है, वह एक दिन तुझे भी दड देगा, ज्वाला को भी और सूरज को भी।

ज्वाला–तूने यह तो वताया ही नही कि पृथ्वीराज की मृत्यु कैसे हुई?

यमुना–वताऊँगी, सव कुछ वताऊँगी, लेकिन वह एक लम्वी कहानी है। भीतर चलिये, आराम से वैठकर सुनिये। अपना कलेजा ठडा कीजिये। अपने दादा भाई को महाराणा वनाने के लिये आगे की योजना वनाइये, सारे वीर पुत्रो को गँवाकर महाराणा रायमल तो अव वावले-से हो गये है। अव उनमे किसी के आक्रमण को रोक सकने की शक्ति नही रही।

सूरजमल–यह तो ठीक है, किन्तु अव सूरजमल मेवाड मे किससे लडेगा? दुर्वल, जराजीर्ण महाराणा रायमल की काया पर सूरजमल की तलवार प्रहार करे, यह तो उसकी आत्मा को स्वीकार नही है। हाँ, अपनी जवानी मे काकाजी पृथ्वीराज के समान ही उद्दण्ड और तूफानी योद्धा थे और इस युद्ध मे मैने देखा कि इस वूढे सिंह मे अपूर्व साहस और शौर्य है, भले ही शक्ति न हो; लेकिन अव अपने एकमात्र अवशेप पुत्र को गँवाकर उनका दिल टूट गया होगा।

यमुना–जान पड़ता है, रक्त की ममता ने आपको विचलित कर दिया है।

ज्वाला—यमुना, प्रतिहिसा के नशे ने हमे बेहोश भले ही कर रखा हो, किन्तु फिर भी हममे रक्त की ममता कभी-कभी जाग ही पड़ती है। मेरे अन्तर मे भी ऐसा जान पड़ता है कि कोई भीतर ही भीतर हथौड़े मार रहा है।

यमुना—ऐसा ही पश्चात्ताप होता है तो व्यर्थ ही आपने मुझसे यह अनर्थ करा डाला, किन्तु आप बड़े लोग है, पतन के पथ पर चाहे कितनी ही दूर चले जायें, आपको वापिस लौट आने की सुविधा प्राप्त है। मेवाड़ पर गिरने वाला वज्र मेवाड की ढाल भी बन सकता है। कठिनाई तो हम लोगो के भाग्य मे है। आप जैसे बडे आदमियों के हाथ का खिलौना बनने वाली यमुना जैसी नारी क्या सत्पथ पर चलने का अधिकार पा सकती है ?

सूरजमल—क्यों नही, तू भली बनना चाहे तो समाज मे प्यार और आदर पा सकती है।

यमुना—नही, यमुना ने भली बनने का यत्न करके देख लिया, किन्तु जब उसके सद्प्रयत्नों पर समाज के निष्ठुर प्रहार हुए तभी वह समाज के प्रति विद्रोहिनी बनी।

ज्वाला—किन्तु तेरा यह ख्याल करना कि हम लोगों को भी अब रास्ता बदल सकने की सुविधा प्राप्त है, गलत है। मेवाड़ सूरजमल और ज्वाला को क्षमा नही करेगा। मेवाड़ में यदि उदारता होती, तो हमे यह रास्ता पकड़ना ही क्यो पड़ता।

यमुना—तब आप रास्ता बदलना नही चाहती ?

ज्वाला—चाहने से भी जो बात सम्भव नही है, उसकी चाह क्यो की जाय ? गिरि-शिखिर पर पहुँचा हुआ व्यक्ति जब पैर फिसल जाने से लुढकता है तो उसका तलहटी तक पहुँचना ही स्वाभाविक है। मेवाड़ के राजमहल का दम्भ सग्रामसिह को गँवाकर, पृथ्वीराज और जयमल को मृत्यु का ग्रास बनाकर भी समाप्त नही हुआ।

वह अभी वहुत-से वहुमूल्य प्राणों की वलि लेगा। चलो अन्दर, मुझे सिरोही-नरेश और पृथ्वीराज के द्वन्द्व का पूर्ण वृतान्त वताओ। इसके पश्चात् दादा भाई को मेवाड के सिंहासन का अधिपति वनाने की योजना निश्चित की जा सकेगी।

(सवका प्रस्थान)

(पट-परिर्तन)

छठा दृश्य

(स्थान—महाराणा रायमल के राजमहल में महारानी शृंगारदेवी का शयन-कक्ष। समय—सन्ध्या। प्रथम अंक के दूसरे दृश्य, दूसरे अंक के पाँचवे दृश्य और तीसरे अंक के पहले दृश्य में इस कक्ष की जो भव्य, मनोरम एवं विलासितापूर्ण साज-सज्जा थी, उसमें बहुत परिवर्तन दिखाई देता है। पर्यंक वही है, किन्तु उस पर एक दुग्ध-धवल चादर बिछी हुई है। दीवारो पर शृंगार रसपूर्ण चित्रों के बजाय हिन्दू-धर्म-कथाओं से सम्बन्धित चित्र सुशोभित हैं। कुसुंबा पीने का पात्र अब दिखाई नहीं देता। कक्ष की सजावट से ही प्रकट होता है कि शृंगारदेवी के जीवन को वैभव-विलास से वैराग्य होकर सादगी और धार्मिकता से आसक्ति हुई है। वीणा आज भी उसके जीवन से अलग नहीं हुई है, लेकिन उसके स्वर बदल गये हैं। परदा उठता है तो शृंगारदेवी बैठी हुई वीणा बजाती दिखाई देती है। उसके वस्त्र भी सादे, किन्तु चांदनी की तरह उजले हैं। वह श्वेत वस्त्रो में साक्षात् सरस्वती जान पड़ती है। महाराणा रायमल प्रवेश करते हैं, जो राजसी पोशाक में है, किन्तु आते ही मस्तक के मुकुट को पर्यंक पर फेंक देते हैं एवं खड्ग को भी कमर से निकाल कर फर्श पर डाल देते है।)

महाराणा रायमल—(पर्यंक पर बैठते हुए) महारानी सरस्वती की प्रतिमूर्ति मत वनो। इस पवित्र वेश में देखकर तुम्हारी पूजा करने को जी चाहता है, किन्तु हमारा सम्बन्ध देवता और पुजारी का नही है।

शृंगारदेवी—(वीणा वाजाना बन्द करके) सासारिक नातों को याद करते रहने की साध क्या महाराणाजी के हृदय मे अब भी शेष

है ? इस लोक को भूलकर अब तो हमे परलोक की सुधि लेनी चाहिये । भगवान् का······

महाराणा रायमल—(बात काटकर) भगवान् ! कहाँ है भगवान् ! शृगारदेवी, भगवान् होता तो क्या हमारे तीन-तीन पुत्र हमसे छिनते ? कौन-सा पाप किया है मेवाड़ के महाराणा ने जो उस पर आकाश से वज्र पर वज्र टूट रहे है । कहते है क्षत्रिय का कलेजा पत्थर का होता है और सचमुच आज तक रायमल पत्थर की भाँति निर्मम, कोमल भावनाओ से शून्य रहा है । उसके जीवन मे कोमलता केवल शृगारदेवी के कक्ष मे आने पर जाग्रत होती थी, किन्तु पृथ्वीराज के मरण के प्रहार ने उसकी निर्ममता और कठोरता की चट्टानो को चीर डाला है ।

शृगारदेवी—महाराणाजी, इसमे तो सन्देह नही कि हम पर ही क्या सम्पूर्ण मेवाड पर विधाता का वज्र टूटा है । जब संग्रामसिह मेवाड को त्याग कर चले गये थे और आपने पृथ्वीराज को निर्वासित कर दिया था, तब शृगारदेवी ने झाला राणी के मातृ-हृदय की वेदना को अनुभव नही किया था, अपितु एक पैशाचिक आनन्द प्राप्त किया था । उसके इसी पाप के कारण उसकी गोद से उसका पुत्र छीन लिया गया । उस दिन ही उसने पहली बार समझा कि पुत्र का वियोग माता के लिये क्या होता है । इसके पश्चात् जब पृथ्वीराज के अकाल दुखद देहावसान का समाचार उसने पाया तो उसे जयमल की मृत्यु से भी अधिक दुख हुआ । सचमुच उस समय उसे यह जीवन भार जान पडा था ।

(यह कहते ही शृगारदेवी उठती है और वीणा को एक कोने में रख देती है ।)

महाराणा रायमल—और शृगारदेवी, मेवाड के माहाराणा ने पूर्ण निश्चय कर लिया है कि वह अब जीवन के बोझ को उतार कर

फेक देगा।

(शृंगारदेवी महाराणा रायमल के पास बैठकर अपना मस्तक उनके घुटनों पर रखती है।)

शृंगारदेवी– जीवन-धन ! ऐसी अशुभ वात मुँह से न निकालिये। विपत्तियों में मनुष्यों की परीक्षा होती है। जो दीपक जलने के लिये जलाया गया है, उसे असमय मे बुझ जाने का अधिकार नही है। भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध हमें कुछ करने की कामना नही करनी चाहिये। जब तक सासो का धागा अदृश्य के संकेत से स्वयं नही टूटता हमे अपना कर्त्तव्य पालते जाना है—धैर्य के साथ, विश्वास के साथ।

महाराणा रायमल–हाँ शृंगारदेवी ! मेवाड़ का महाराणा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहेगा और कर्त्तव्य का पालन करते हुए ही असह्य वोझ को उतार फेकेगा।

(महाराणा उठकर खड़े हो जाते हैं और बेचैनी से इधर-उधर कदम रखते हैं।)

महाराणा रायमल–संसार देखेगा कि सूर्यवंशावतंश महाराणा रायमल का जीवन-दीप अंतिम समय अपने अपूर्व प्रकाश से भगवान भास्कर को भी चकित कर रहा है। (फर्श पर पड़े हुए खड्ग को उठाते हैं) यह खून का प्यासा खड्ग अन्तिम बार रक्त मे स्नान करेगा।

शृंगारदेवी–आप क्या कह रहे है, क्या मेवाड की भूमि और भी रक्त की प्यासी है ?

महाराणा रायमल–भूमि की प्यास कही मिटती है ? ग्रीष्म ऋतु की तपन भूमि को प्यासी वना देती है, तब मेघ घिरते है, वरसते है, भूमि तृप्त होती है। किन्तु फिर यही क्रम चलता है। इसी प्रकार प्रत्येक देश मे अत्याचार के ताप से भूमि रक्त की प्यासी हो

उठती है, तब युद्ध के बादल घिरते है, रक्त की वर्षा होती है। यदि रक्त नही बरसे तो स्वाधीनता, स्वाभिमान, सुख और वैभव की खेतियाँ हरी नही रह सकती। मेवाड मे फिर रण के घन घिर आये है, फिर रक्त की भयानक वर्षा होगी।

शृंगारदेवी–मेवाड मे फिर रण के घन घिर आये है, फिर रक्त की भयानक वर्षा होगी। अनेक जयमल और पृथ्वीराज अपनी माताओ की गोद सूनी कर पिताओ को निराशा के अन्धकार में डुबाकर चले जायेंगे।

महाराणा रायमल–इतना ही नही, अनेक पिता अपने पुत्रो को अनाथ बनाकर वीरगति पाने का गौरव लूटेंगे, अनेक पति अपने हाथ से अपनी प्राणप्रिय पत्नियो की माँग के सिन्दूर पोछ डालेगे, चीत्कार और करुणा-क्रदन से सम्पूर्ण देश का वातावरण क्षुब्ध हो जायगा।

शृंगारदेवी–विनाश के इस दारुण दाह को फिर से प्रज्वलित करने वाला कौन निष्ठुर है?

महाराणा रायमल–और कौन, हत्यारे ऊदाजी की सतान–वही सूरजमल, वही मालवा का सुल्तान, मेवाड़ का चिर-शत्रु, जो मेवाड़ से सतत पराजित होता रहा है। जिस पर मेवाड ने सदा ही कृपा की, वही कृतघ्न अब पुत्र-वियोग से व्यथित मेवाड़ के महाराणा को शक्तिहीन, जर्जर मानकर भूखे भेडिये की तरह टूटने को आतुर हो उठा है।

शृंगारदेवी–किन्तु महाराणा जी, क्या कोई सूरजमल को रास्ते पर नही ला सकता? अब जबकि हमारे कुल-दीपक बुझ चुके है, सूरजमल को ही एक न एक दिन बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर बैठने का अधिकार प्राप्त होगा। तब उसे व्यर्थ ही उतावला होने की आवश्यकता क्या है?

महाराणा रायमल–सूरजमल बाप्पा रावल की पवित्र गद्दी पर बैठने

का अधिकार कभी नही पा सकता। रायमल के खड्ग के प्रचण्ड प्रहार ने हत्यारे ऊदाजी को मेवाड़ की पवित्र राजगद्दी को अपवित्र नही करने दिया। वह उस हत्यारे के पुत्र को भी जिसने एक दिन जन्मभूमि के प्रेम का स्वाग रचा था, किन्तु जो अब अपने पिता के पद-चिह्नों पर तेजी से भाग रहा है, गद्दी पर नही बैठने देगा। रायमल के पुत्रों ने ऊदाजी की काली करतूतों का दंड उसे दिया है, किन्तु आज उनके न रहने पर प्रपंची भूखे भेड़िये मस्तक उठाने लगे है। आज अपने नौजवान पुत्रों के अभाव में इस बूढे सिह को इनका कलेजा फाड़ना होगा।

(एक दासी का प्रवेश और महाराणा को झुककर अभिवादन करना)

दासी—अन्नदाता की जय हो ! राजयोगीजी महाराणाजी के दर्शन करने आये है।

शृंगारदेवी—इस समय !

महाराणा रायमल—मेवाड़ पर जब-जब सकट के बादल मँडराते है, मेवाड़ के हितैषी व्याकुल होकर उसके पास दौड़ पड़ते है। (दासी से) राजयोगीजी को आदर सहित ले आओ।

दासी—जो आज्ञा !

(दासी का प्रस्थान)

शृंगारदेवी—क्या राजयोगीजी भी सूरजमल को समझा-बुझाकर सत्पथ पर नही ला सकते ? सूरजमल से अधिक भयानक ज्वाला है, किन्तु उसकी एक दुर्बलता कहो या अच्छाई कहो, यह है कि वह धर्म में श्रद्धा रखने वाली नारी है, कम से कम वह तो राजगुरु के उपदेश का कुछ मान रखेगी।

महाराणा रायमल—महारानी, राजपूतो के मस्तिष्क को तुम जानती हो। राजगुरु का उपदेश भी ज्वाला और सूरजमल को दुराग्रह से हटा नही सकता। यदि कभी उनको सद्बुद्धि आवे तो भारत-

वासियों पर राज्य करने की आकाक्षा रखने वाले विदेशी उनके विवेक को डावाँडोल कर देते है। स्वार्थ और लोभ जब मनुष्य को पतन के पथ पर ले चलते है तब उसका अपनी ही गति पर कोई नियत्रण नही रहता। मत्र-चालित यत्र की भाँति वह पाप के पथ पर अविरत अग्रसर होता जाता है।

(राजयोगी का प्रवेश। महाराणा एव महारानी राजयोगी के चरण छूते हैं।)

राजयोगी—आयुष्मान् एव यशस्वी रहो।

महाराणा रायमल—राजयोगीजी, इस समय आने का क्योकष्ट उठाया?

राजयोगी—मेवाड के महाराणा पर जो विपत्ति का पहाड़ टूटा है उससे मेवाड का जन-मानस व्यथित हो उठा है। राजयोगी विचलित न होता यह कैसे सम्भव था? कार्यवश मै बाहर गया हुआ था, अन्यथा आज से बहुत पहले ही यहाँ उपस्थित हो जाता।

महाराणा रायमल—आपकी कृपा के लिये आभारी हूँ।

शृगारदेवी—राजयोगीजी, आप तो त्रिकालज्ञ है। सुनते है आपकी वाणी मे स्वय भवानी बोलती है। क्या आप नही बता सकते कि मेवाड-भूमि मे रक्त-वर्षा कभी समाप्त भी होगी?

राजयोगी—राठौरो की पुत्री और गहलोतो की राजलक्ष्मी रक्त की वर्षा से भयभीत होती है? आश्चर्य की बात है, महारानी। जिस देश ने न तो रक्त दिया है न रक्त लिया है वह प्राणहीन है। वह आन्तरिक विपत्ति एव बाह्य आक्रमण के हलके से झोके को भी सँभाल सकने की सामर्थ्य नही रखता। जब तक जगत की श्वास मे प्रभुता-प्राप्ति की अभिलाषा एवं राज्य-लिप्सा है तब तक रक्त की वर्षा को बन्द कर देने का कोई उपाय नही है। देश को रक्त-वर्षा मे स्नान कराकर स्वस्थ बनने का प्रयास ही किया जा सकता है।

महाराणा रायमल–किन्तु राजयोगीजी, मेवाड़ तो रक्त के समुद्र मे मानो डूब ही जायेगा।

राजयोगी–आपके मन की आशंका को मैं समझता हूँ, महाराणाजी। मुझे भय था कि महाराणाजी रात-दिन के सग्राम से ऊब न गये हो, पुत्र के वियोग ने उन्हे राज-काज के प्रति उदासीन न कर दिया हो, इसलिये भवानी की आज्ञा से मुझे आना ही पडा। शत्रु सुअवसर पाकर घात करने वाला है। कुछ ही दिनो में टिड्डी दल की भाँति रिपु-सेना आक्रमण करेगी। हमे शत्रु के मेवाड भूमि में पदार्पण करने की प्रतीक्षा नही करनी चाहिये। आक्रमण करने वाले पर उसके घर मे जाकर स्वयं आक्रमण करना चाहिये।

शृंगारदेवी–जब हमारे सारे पुत्र हमसे छिन गये है, तब सूरजमल को ही हम अपना पुत्र मान ले तो हर्ज क्या है ?

राजयोगी–वैसे तो मेवाड़ की सारी प्रजा महाराणाजी की सतान है। महाराणा जिसे चाहे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकते है, किन्तु सूरजमल ने तो मेवाड-भूमि को विदेशियो से पद-मर्दित कराने का प्रयत्न किया है। ऐसे व्यक्ति पर प्रजा की श्रद्धा कैसे होगी ? राजा ऐसा होना चाहिये जिस पर प्रजा श्रद्धा कर सके। मेवाड़ की प्रजा पथ-भ्रष्ट, विवेकहीन, अभिमानी व्यक्ति को अपना भाग्य-विधाता मानने को प्रस्तुत नही है। सूरजमल को देशद्रोह का दंड देना आवश्यक है। जो महाराणा अपने पुत्र जयमल के यौवन के थोड़े-से पथ-विचलित होने को क्षमा नही कर सके वह क्या सूरजमल को क्षमा कर देंगे ?

महाराणा रायमल–नही राजयोगीजी, मै उसे अवश्य दड दूंगा, किन्तु एक बात है कि दंडदाता मे दड देने की शक्ति होनी चाहिये। मेवाड़ की शक्ति का क्या हाल है, यह तो आप जानते ही हैं। नाम बड़े और दर्शन थोडे वाली बात है। पृथ्वीराज के स्वर्गवास

ने उसकी कमर ही तोड़ डाली है।

राजयोगी–महाराणाजी, देश की शक्ति उसका राजा अथवा राजकुमार नही है, देश की शक्ति उसकी प्रजा है। मेवाड़ की प्रजा आज भी अपने पिता सदृश महाराणा एव अपने देश के स्वाभिमान की रक्षा के लिये जाग्रत है। वह परदेशी शक्तियो से गठ-बधन करने वाले देश-द्रोहियो को दड देने मे समर्थ है।

महाराणा रायमल–किन्तु, राजयोगीजी, क्या युद्ध की विभीषिका मे अपनी प्यारी प्रजा को झोक देना उचित होगा ? सहस्रो सैनिको की जाने लुटाने की अपेक्षा अपने अह को थोडा-सा झुक जाने देकर, सन्धि करली जाये तो क्या प्रजा को कोई आपत्ति होगी ?

राजयोगी–अवश्य होगी, ऐसी स्थिति मे प्रजा विद्रोह करेगी।

शृगारदेवी–और उसका नेतृत्व राजयोगी करेंगे।

राजयोगी–प्रजा की आज्ञा होने पर ! किन्तु मेरा विश्वास है ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नही होगी। मेवाड विपरीत परिस्थितियो मे पड़कर भी साहस नही छोडता। कभी स्वाभिमान के विपरीत शत्रु से सधि नही करता। समय पर उसे कभी नेतृत्व का अभाव भी अनुभव नही हुआ। एक नही सहस्र पृथ्वीराज प्रजा मे से ही प्रकट हो जायेगे। महाराणाजी, आप विश्वास को न छोड़िये।

महाराणा रायमल–आपने मेरे असमजस को दूर कर दिया है। दुविधा के सारे बादल दूर हो गये है। महाराणा रायमल के हृदय मे बसने वाला पिता भले ही आज अपने सभी पुत्रो के वियोग से व्याकुल हो, किन्तु उसकी यह व्याकुलता उसको कर्तव्य-पथ से विमुख नही कर सकेगी। सूरजमल के आगे अथवा विदेशी सत्ताओ के सम्मुख मस्तक टेकने की कायरता रायमल स्वप्न मे भी नही करेगा। किन्तु फिर भी उसके मन मे इस बार मेवाड की विजय के सम्बन्ध मे सशय है ही।

राजयोगी—महाराणाजी, कर्तव्य करना मनुष्य का धर्म है, फल की उसे चिन्ता नही करनी चाहिये। किन्तु मै आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेवाड़ की ध्वजा इस बार भी झुकेगी नही। मेवाड़ की शक्ति को उसके वास्तविक रूप मे देखने का अवसर महाराणाजी को प्राप्त होगा। मेरे साथ मेवाड़ की प्रजा के कुछ प्रतिनिधि आपके दर्शन के लिये आये है। अच्छा हो कि आप उन्हे दर्शन देने की कृपा करे।

महाराणा रायमल—अच्छी बात है, आप उन्हे मंत्रणा-गृह मे लाइये। मै भी वहाँ पहुँचता हूँ।

(सबका प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—माडू एवं चित्तौडगढ के मध्य एक पहाड़ी मार्ग। समय—संध्या। सूरजमल और ज्वाला का प्रवेश। सूरजमल समर-भूमि में जाने वाले योद्धा के उपयुक्त सशस्त्र अवस्था में है और ज्वाला के हाथ में नंगी तलवार है।)

ज्वाला–दादा भाई, हमे यही ठहरना चाहिये। मैने यमुना को इसी स्थान पर मिलने का आदेश दिया है।

सूरजमल–किन्तु वह गई कहाँ है ?

ज्वाला–चित्तौड।

सूरजमल–किन्तु चित्तौडगढ मे वह जा भी कैसे सकेगी ?

ज्वाला–क्यो ? जाने मे क्या बाधा है ? महाराणा कुभा के काल से चित्तौडगढ के द्वार बन्द नही किये जाते, यह तो तुम जानते हो, वह कहते थे कि चित्तौड का एक द्वार दिल्ली है, दूसरा माडू और तीसरा गुजरात। महाराणा रायमल अपने पूर्वजो की परम्परा का पालन करते है।

सूरजमल–किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि युद्ध-काल मे भी मेवाड़ चित्तौड़ दुर्ग मे आने-जाने वाले व्यक्तियो के प्रति सावधान नही रहता। महाराणा कुभा के कथन का अर्थ केवल इतना है कि मेवाड़ी वीर चित्तौड के दुर्ग मे बन्द रहकर रक्षात्मक युद्ध करना पसन्द नही करते। शत्रु की सीमा मे प्रवेश कर आक्रमणात्मक युद्ध करना ही उनके प्राणो को प्रिय है।

ज्वाला–प्रिय भी है और अनुकूल भी ?

सूरजमल–अनुकूल भी, क्योकि शत्रु के प्रदेश मे घुसकर युद्ध करने वाला राजा अपनी प्रजा को युद्ध-ज्वाला की लपटो से बचा लेता

है। दो भैंसो के युद्ध मे बाड़ का चुरकन वाली कहावत के अनुसार समर-क्षेत्र के आसपास के प्रदेश को भी विध्वंश का शिकार होना पड़ता है।

ज्वाला—यह तो ठीक है, किन्तु प्रश्न यह है कि महाराणा रायमल अब आक्रमणात्मक युद्ध कर सकने मे समर्थ भी है या नही ? मेवाडी रक्त-बीज के वंशज तो है नही कि उनके रक्त-बिन्दु से नवीन योद्धा तुरन्त जन्म लेकर खड़ा हो जाय। शताब्दियों से एक क्षण के लिये भी मेवाड़ी योद्धाओ को विश्राम करने का सुअवसर प्राप्त नही हुआ। आये दिन सहस्रो मेवाडी सेनानियों को समर-भूमि मे चिर-निद्रा मे लीन होना पड़ा है। इस समय महाराणा की सैनिक शक्ति सीमित है। अत. मै समझती हूँ, वह दुर्ग मे रहकर ही युद्ध करना उचित समझेंगे।

सूरजमल—मै भी यही समझता हूँ। संभवत: महाराणाजी विवश होकर अपने आवेश पर संयम रखेगे। मुट्ठी भर वीर सैनिको को खुले मैदान मे ले जाकर, अपनी अपेक्षा कई गुनी अधिक सेना से भिड़ाकर आत्मघाती नीति का पालन नही करेंगे। बार्धक्य एवं जीवन-व्यापी सघर्षों ने उनके शरीर को जीर्ण भले ही किया हो, किन्तु उन्हे सतर्क तो बनाया ही है। मुझे भय है कि वास्तव में महाराणा जी दुर्ग में रहकर ही युद्ध करेगे तो हमारे लिये बड़ी कठिन समस्या खडी हो जायगी।

ज्वाला—ऐसा क्यों कहते हो ?

सूरजमल—क्योकि चित्तौड़ दुर्ग साधारण दुर्ग नही है। अलाउद्दीन जैसे अद्भुत साहसी, अनुपम रण-कुशल, अपार सैनिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति को चित्तौड़ दुर्ग पर विजय पाना टेढी खीर हो गया था। मांडू के इन आधे मन से लडने वाले सैनिको के बल पर क्या हम गढ मे प्रवेश पा सकेंगे ? गढ में प्रवेश पाने का एक-

मात्र उपाय दीर्घकाल तक उसे घेरे रहना है, ताकि शत्रु को जीवन की आवश्यक वस्तुओ का अभाव होने पर दुर्ग के द्वार खोलने पड़े। किन्तु माण्डू के सुलतान हमारे लिये सुदीर्घ काल तक लडते रहने का धैर्य एव उदारता दिखा सकेंगे, इसमे मुझे सन्देह है।

ज्वाला–दादा भाई, आपका सन्देह ठीक है, किन्तु मै समझती हूँ हमे अधिक काल तक दुर्ग पर घेरा डालना नही पड़ेगा।

सूरजमल–ऐसा तू क्यो समझती है ?

ज्वाला–क्योकि मै ऐसा उपाय करना चाहती हूँ, जिससे मेवाड दुर्ग की खाद्य-सामग्री शीघ्र से शीघ्र नष्ट हो जाय और मेवाडी सेना को बाहर आकर लड़ना पड़े।

सूरजमल–क्या उपाय है वह ?

ज्वाला–वही उपाय करने तो यमुना गई है। सिरोही-नरेश भी मेवाड़ की ओर से लडने के लिये चित्तौड़ पहुँचे है।

सूरजमल–क्या पृथ्वीराज को विष देकर छलपूर्वक मारने वाले सिरोही-नरेश को महाराणा ने क्षमा कर दिया ?

ज्वाला–हाँ, अपने पुत्र के हत्यारे को क्षमा माँगने पर महाराणा ने अभय-दान प्रदान कर दिया है, क्योकि उसके प्राण लेने का अर्थ अपनी पुत्री को विधवा बनाना था। वह भी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये अपनी सेना-सहित चित्तौड जा पहुँचा है। मुझे विश्वास है, समय पर वह हमारा कार्य सफल कर देगा।

सूरजमल–किन्तु यह तो सरासर धोखा है। इस प्रकार छल और प्रपच से हमने मेवाड़ पर विजय पाई तो उससे हमारे मन को क्या सतोष होगा ? नही ज्वाला, ये ओछे हथियार अपने ही तरकस मे रख। सूरजमल इनका प्रयोग नही होने देगा।

ज्वाला–दादा भाई, रण मे किसी भी साधन का उपयोग कर लेना

अनुचित, नही। यदि आचार्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाने के आयोजन में हम राजपूतों जैसी धर्म-युद्ध करने की मूर्खता की होती, तो क्या नंद जैसे सर्वसाधन सम्पन्न शक्तिशाली सम्राट् से वह विजय पा सकते थे ? इतिहास ने न तो चन्द्रगुप्त की निन्दा की, न चाणक्य की। अतः सूरजमल को चन्द्रगुप्त के पद-चिह्नों पर चलने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। तुम्हारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य मेवाड़ के राज्य को हस्तगत करना होना चाहिये।

(एक सशस्त्र भील के रूप में संग्रामसिंह प्रवेश करता है। उसकी कमर में तलवार बँधी है। पीठ पर तूणीर है। एक हाथ में धनुष और दूसरे में बाण है।)

संग्रामसिंह—(पहचाने जाने से बचने के लिये कृत्रिम स्वर में) सचमुच यह एक विडम्बना है कि एक गहलोत राजकुमार, वीरभूमि मेवाड़ का सपूत विदेशी अत्याचारियो को अपनी माँ के वक्षस्थल को रौदने के लिये आमन्त्रित करता है और अपनी माँ के अपमान से प्रसन्न होता है।

सूरजमल—कौन है तू ?

संग्रामसिंह—(कृत्रिम स्वर में) एक भील। आपकी भाँति ही मेवाड़ का एक पुत्र।

ज्वाला—किन्तु किसी वन-पुत्र को गहलोत राजवंश के पारस्परिक संघर्ष के बीच पड़ने का दुस्साहस नही करना चाहिये।

संग्रामसिंह—(कृत्रिम स्वर में) क्यों नहीं करना चाहिये ? जब राजवंश के पारस्परिक संघर्ष का दुष्परिणाम राज्य की प्रजा के जीवन पर प्रभाव डालता है, तब प्रत्येक प्रजाजन को अपने हित की दृष्टि से उस सघर्ष मे भाग लेना आवश्यक हो जाता है, तिस पर भीलो का मेवाड़ के राजवंश पर विशेष अधिकार है। भीलों की

सहायता से ही वीरवर बाप्पारावल ने चित्तौड के देशद्रोही मानसिह मौर्य के मस्तक से राजमुकुट छीनकर अपने मस्तक पर रखा था। एक भील ने ही गहलोत के आदि पुरुष का राजतिलक अपने अँगूठे के खून से किया था और अब भी उसके वशज मेवाड़ के महाराणाओ का राजतिलक अपने अँगूठे के रक्त से करने की परम्परा का पालन करते है। याद रखो पद-भ्रष्ट राजकुमार, भीलो के रक्त की जिस पर कृपा होगी, मेवाड़ का राजमुकुट उसी के मस्तक पर होगा।

ज्वाला–भगवान् राम के वशज गहलोतो का रक्त वन-पुत्र भीलो के अपवित्र रक्त की कृपा नही चाहता।

सग्रामसिह–(कृत्रिम स्वर में) क्योकि उसे विदेशियो के रक्त से अधिक ममता हो गई है, जो अपने अँगूठे के रक्त से नही, अपितु अपनी तलवार पर लगे हुए गहलोत-रक्त से ही गहलोत-राजपुत्र का अभिषेक करने की साध रखते है, और चाहते है कि बाप्पारावल के मस्तक पर गौरवान्वित होने वाला राजमुकुट उनके चरणो का स्पर्श करे।

सूरजमल–वाचाल भील युवक, गहलोत वश का राजकुमार सूरजमल मेवाड के राजमुकुट की प्रतिष्ठा रखने के लिये अपने प्राणो की बाजी लगा देगा, भले ही राजमुकुट उसके सिर पर रहे अथवा किसी दूसरे गहलोत के।

(संग्रामसिह अपने चेहरे से नकली दाढी-मूछें अलग करता है एवं स्वाभाविक स्वर में बोलता है।)

संग्रामसिह–जिओ दादा भाई! मै तुम्हारे मुँह से यही वीरता और उदारता से भरे हुए शब्द सुनना चाहता था। याद रखो, तुम राजपूत हो, भगवान् राम के वंशज हो, तुम्हारे मुँह से जो शब्द उच्चारित हुए है, अब उनका मान रखना तुम्हारे लिये आव-

श्यक है ।

ज्वाला—(साश्चर्य) कौन, दादा भाई संग्रामसिंह !

सूरजमल—भैया सग्रामसिंह !

(यह कहते हुए सूरजमल सग्रामसिंह को गले लगा लेता है । दोनों की आँखो में प्रेमाश्रु प्रवाहित होते हैं और कुछ देर दोनों कुछ नहीं बोल पाते । इसी समय एक भीलनी के वेश में यमुना आती है

यमुना—बेर ले लो, रानीजी ! मेवाड के जगलों के बेर । मेवाड़ की बेरियों की झाड़ी के नीचे सिंह रहते है, रानीजी ! इसलिये समझ लो, कैसी विपत्ति के मुँह मे पॉव रखकर ये बेर लाने पडते है ।

(ज्वाला आँखों ही आँखों में यमुना को संग्रामसिंह और सूरजमल से अलग चलने का संकेत करती है ।)

ज्वाला—(यमुना से) बड़ी आई बेर वाली, निकल यहाँ से, नही तो, (तलवार दिखाती है ।)

यमुना—बाप रे, नारी है या नागिन !

(भय का नाट्य करती हुई यमुना प्रस्थान करती है और ज्वाला तलवार ताने हुए उसके पीछे जाती है, किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् ही लौट आती है, मानो यमुना को कुछ आदेश देने के लिये गई हो । इस बीच सूरजमल और सग्रामसिंह भी प्रकृतिस्थ होकर अलिगन से मुक्त होते हैं ।)

सूरजमल—मुझे तो इस बात का विश्वास था कि एक दिन तुम प्रकट होगे ।

ज्वाला—राजमुकुट के मोह को प्राणों मे दबाये हुए कब तक बैठे रहते । सुअवसर जानकर प्रकट हो ही गये ।

संग्रामसिंह—ज्वाला, इतने दिनों बाद हम मिले है, फिर भी तू बिच्छू की भॉति डक मारती है ?

ज्वाला—दादा भाई, ज्वाला तुम्हारी तरह चेहरा नही वदलती। वह भीतर-बाहर एक है। मुँह मे राम बगल मे छुरी वाली कहावत चरितार्थ नही करती। तुम्हारी तरह त्याग का ढोग नही करना चाहती और न दादा भाई सूरजमल को करने देगी। समझते हो कि दो मीठी वाते वनाकर भोले भाई को ठग लोगे।

संग्रामसिह—ज्वाला, अभी तो संग्रामसिह ने न प्रेम की वात की है, न सग्राम की। वरसो से विछडे वन्धु स्वभाववश रक्त के आग्रह से प्रेमालिगन मे वँध गये। आँसुओ मे उनके मन की व्यथा वह चली। कदाचित् तुझे यह नही भाया, किन्तु इसमे हमारा क्या वश है? प्रकृति ने अपना काम किया। प्रकृति कहती है, भाई का नाता गले मिलने के लिये है, परस्पर तलवारे तानने के लिये नही। किसलिये तुम मेवाड की छाती पर विदेशी सेना का ताण्डव कराना चाहती हो?

ज्वाला—तव तुम वन्द करा दो इस ताण्डव को।

सग्रामसिह—कैसे?

ज्वाला—न्याय को आदर दिलाकर। जिन्होने मेरा अपमान किया है उन्हे दडित करने का मुझे अवसर देकर एव सूरजमल का मेवाड की गद्दी पर न्यायपूर्ण एव स्वाभाविक अधिकार स्वीकार कर।

सग्रामसिह—बहन, तेरा किसने अपमान किया है और किस प्रकार किया है, यह तो मै नही जानता, किन्तु मान लेता हूँ कि मेवाड़ के राजमहल मे किसी ने तेरा अपमान कर दिया होगा, फिर भी तुझे सोचना चाहिये कि व्यक्तियो का वदला देश से नही लिया जाता। खिसियानी बिल्ली खभा नोचे वाली कहावत चरितार्थ न कर। व्यक्ति का वदला समाज से न ले।

ज्वाला—किन्तु व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है। जिन उद्धत नारियो ने मेरा अपमान किया है, वे राजपूतो के उच्च कुल एव पवित्रता

के दम्भ का प्रतिनिधित्व करती है। उनका अनाचार व्यक्तिगत दोष नहीं है। उनके कार्य में सम्पूर्ण समाज की अनुदारता एव सकीर्णता प्रतिध्वनित हुई है। अतः मेरा क्रोध सम्पूर्ण समाज पर है। मै तलवार की नोक से मेवाड की प्रत्येक क्षत्राणी के वक्षस्थल में लिख देना चाहती हूँ कि ज्वाला का जीवन उनके जीवन से कम पवित्र नही है।

संग्रामसिंह—बहन, मानता हूँ, तू तलवार की नोक से मेवाड़ की क्षत्राणियों का हृदय विदीर्ण कर डालेगी, किन्तु मुझे सन्देह है कि तू उनके मस्तिष्क मे जो लिखना चाहती है वह लिख सकने मे सफल हो सकेगी। मस्तक मे अथवा हृदय मे लिखने के लिये तलवार रूपी लेखनी बेकार सिद्ध होती है, वहाँ तो उदारता-भरी चितवन और प्रेम-भरी वाणी ही सफल हो सकती है।

सूरजमल—संग्रामसिह, राजपूत तो केवल तलवार की वाणी में बोलना जानता है।

संग्रामसिंह—ठीक है, तलवार के धनी वीर भी कहलाते हैं, तलवार का पानी तकदीरे बनाता और बिगाडता है। बहुत ताकत है तलवार मे। लेकिन याद रखो, तलवार को म्यान मे रखने की ताकत किसी महा बलवान् आत्मा वाले महापुरुष को ही प्राप्त होती है। दादा भाई, मै तुममे वह बल भी देखना चाहता हूँ।

ज्वाला—स्वय अपने आप मे नही ?

सग्रामसिह—ज्वाला, सग्रामसिह ने अपनी तलवार की ताकत पर बहुत सयम रखा है। उसे खेद है कि क्यों नही वह इससे पहले ही रग-मंच पर आया।

ज्वाला—क्योंकि उसे अपने सभी भाइयो के लडकर समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा थी।

सग्रामसिंह—नही। उसमे उस समय भाइयो के रणोन्माद को दूर करने

की शक्ति नही थी। वह स्वयं युद्ध को रोक नही सकता था। प्रेम और विश्वास पाने के लिये कभी-कभी शक्ति का सचय करना आवश्यक होता है। दुर्बल व्यक्ति प्रेम भी नही पा सकता और न विश्वास। आलिगन करने के लिये भी भुजाओं मे ताकत चाहिये। पहले सग्रामसिह मे प्रेमालिगन करने की शक्ति भी नही थी। किन्तु आज अपने भाई को गले लगाने का सामर्थ्य उसमे है। आज उसकी भुजाओं मे आलिगन करने का बल है।

(यमुना का कुछ सैनिकों सहित प्रवेश)

ज्वाला—किन्तु ज्वाला और सूरजमल के संकल्प के मध्य जो भुजाये आडे आवेगी उन्हे काट डाला जायगा। (आगत सैनिको से) बाँध लो इन्हे।

सग्रामसिह—(हाथ बढाता हुआ अट्टहास करता है।) ह ह हः बाँधो मुझे! बहुत चतुर हो ज्वाला तुम। तुमने इन सैनिको को व्यर्थ ही बुलाया। राखी बाँधने वाले बहन के हाथ क्या भाई को बाँधने का बल नही रखते। मनुष्यो के हाथो मे बँध सकने की शक्ति सग्रामसिह मे है। (सैनिको से) बाँधो मुझे। अपनी स्वामिनी की आज्ञा का आदर करो।

(सैनिक संग्रामसिह की ओर बढते है, इसी समय तारा और राजयोगी प्रवेश करते है जिनके साथ सशस्त्र सैनिक हैं, जो यमुना के साथ आये सैनिको से संख्या में बहुत अधिक हैं। यमुना के साथ आये हुए सैनिक हतप्रभ हो जाते है।)

तारा—ज्वाला, संग्रामसिह को बाँध सकने की शक्ति तुममे या सूरजमल मे नही है। सूरजमलजी रावण की भाँति तप करके बीस मस्तक वाले बन जायँ तब भी सग्रामसिह का बाल बाँका नही कर सकते। (अपने सैनिको से) बाँध लो इन्हे।

(संग्रामसिह की ओर बढने वाले सैनिको की ओर उँगली

उठाती है।)

संग्रामसिंह—नही, इन बेचारो का क्या वश ? इन्हे जाने दो।

(ज्वाला के सैनिक साश्चर्य संग्रामसिंह की ओर देखते हैं, फिर ज्वाला एवं सूरजमल की ओर। ज्वाला यमुना को आँखों ही आँखो में जाने का इशारा करती है।)

संग्रामसिंह—(यमुना से) ले जाओ अपने साथियो को।

(यमुना एवं उसके साथी जाते हैं।)

तारा—(अपने सैनिको से) तुम भी जाओ और देखो ये विश्वास-घात न करने पावे।

(तारा और राजयोगी के साथ आए हुए सैनिक भी प्रस्थान करते हैं। ज्वाला भी जाना चाहती है किन्तु राजयोगी रोकते हैं।)

राजयोगी—यह मत समझ ज्वाला कि मेवाड़ सो रहा है। उधर देख, उस पहाड़ी पर वास्तविक शक्ति के दर्शन कर। सहस्रो धनुर्धारी वीर भील योद्धा मालवा के सुलतान की सेना का स्वागत करने को प्रस्तुत हैं।

सूरजमल—तो सिंह जाल मे फंस गया है ?

संग्रामसिंह—इसका अफसोस न करो दादा भाई! संग्रामसिंह राजपूती परम्परा का पालन करेगा। सूरजमल की उदारता भी उसने देखी है, जब युद्ध-काल मे रात्रि के समय पृथ्वीराज उनसे मिलने गया था। ऐसे विशाल हृदय भाई पर संग्रामसिंह ओछा वार नही करेगा। तुम चाहो तो अपने शिविर मे लौट जाओ।

सूरजमल—मुझ पर दया करोगे ?

संग्रामसिंह—नही, तुम्हारी इज्जत करूंगा। छोटा भाई होने के नाते अपने कर्तव्य का पालन करूंगा। संग्रामसिंह अधर्म युद्ध नही करेगा। उसमे संग्राम करने की शक्ति है, इसका यह अर्थ नही है कि वह कसाई बन जायगा। मेरी तरफ से तुम्हे अपने शिविर

मे लौट जाने एव कल प्रातः युद्ध-भूमि मे तलवारे मिलाने की छूट है।

ज्वाला–दादा भाई, यदि आपके हृदय में अपने बडे भाई के लिए आदर है तो क्यो नही महाराणाजी को तैयार करते कि वह ऊदाजी के पुत्र को ही युवराज मान ले। महाराणा अजयसिंहजी ने भी तो अपने पुत्रों के स्थान पर अपने बडे भाई के पुत्र हमीर को युवराज घोषित किया था।

सग्रामसिह–इसमे मुझे कब आपत्ति रही है?

राजयोगी–हाँ, सग्रामसिह को कोई आपत्ति नही रही है, लेकिन उसे आपत्ति न करने का अधिकार नही है। राजमुकुट तो प्रजा के विश्वास का प्रतीक है; जिस पर प्रजा का विश्वास हो, उसे ही राजमुकुट शोभा देता है। यदि तुम विश्वास करते हो कि मेवाड की प्रजा का तुम पर विश्वास है, उससे अधिक जितना संग्रामसिह पर है, तो बडी खुशी से तुम मेवाड के युवराज बन सकते हो।

ज्वाला–प्रजा की इच्छा का यहाँ कोई प्रश्न नही है राजयोगी जी, प्रजा को तो राजा का अनुगमन करना होता है।

तारा–ऐसा ही भ्रात विचार एक दिल ऊदाजी के मन में उठा था।

सग्रामसिह–दादा भाई, मेवाड़ के राजमुकुट का सचमुच सग्रामसिह को मोह नही है। और सच पूछा जाय तो मेवाड के महाराणा को कभी राजा होने का, प्रजा का स्वामी होने का, ऐश्वर्य और वैभव के उपभोग के अधिकारी होने का गर्व करना ही नही चाहिये, क्योकि वह तो राजा नही, एकलिंग का दीवान मात्र है। गहलोत वंश के राजपुत्र ही क्या, प्रत्येक मेवाड़ी, यहाँ तक कि वनो मे निवास करने वाला प्रत्येक भील भी मेवाड राज्य का समान रूप से स्वामी है।

राजयोगी–प्रजा चाहे जिसके मस्तक पर राजमुकुट रख दे। राजवश

के व्यक्तियों को इसमे आपत्ति ही क्यों होनी चाहिये। देखो सूरजमल, उधर आकाश में मालवा की सेना के आने से जो धूल के बादल बने है, उन्हे अस्तंगत सूर्य की किरणो ने लाल कर दिया है। क्या तुम मेवाड़ की भूमि को ऐसी ही लाल-लाल करते रहना चाहते हो ?

तारा—ज्वाला, तुम भी सोचो; जिस देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये शताब्दियों से मेवाडी वीर मस्तक चढाते आये है, जिस देश का सम्मान रखने के लिये महासती पद्मिनी और उनके साथ सहस्रों वीरागनाओ ने जीते-जी जाज्वल्यमान जौहर की ज्वाला मे जीवन की आहुतियाँ दी है, उसे एक व्यक्ति के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये, विदेशियों का मांडलिक बना दिया जाय, क्या यह उचित है ? उसे एक व्यक्ति मुकुट के मोह मे पडकर विदेशियो द्वारा पद-मर्दित कराये, क्या यह उचित है ?

ज्वाला—तो तुम लोग चाहते हो कि हम हार मान ले।

संग्रामसिंह—जब हमारे बीच लड़ाई ही नही है, तो हार-जीत का प्रश्न उठता ही नही है। संग्रामसिंह का शत्रु सूरजमल नही है और सूरजमल का शत्रु सग्रामसिंह नही और मेवाड से तो दोनों की शत्रुता नही है। कम से कम देश के नाम पर हमें एक हो जाना चाहिये। कर्तव्य हमे पुकार रहा है। भारत पर विदेशियो की गृद्ध-दृष्टि लगी हुई है। वे इसे नोच खाने की घात मे है। हमारी धमनियों मे रक्त है, रक्त मे मनुष्यता, वीरता और देश-प्रेम है, तो हमे अपनी शक्ति देश के वास्तविक शत्रुओं से लोहा लेने मे लगानी चाहिये।

तारा—हमे केवल सत्ता-लोलुप विदेशी शक्तियो से ही नही लड़ना है, बल्कि अपनी उन सकीर्णताओं एव कुसंस्कारो से भी लड़ना है जो ज्वाला जैसी तेजस्विनी और चिरपवित्र नारियों का अपमान

करने का दुस्साहस करते है, हमे मनुष्य-मनुष्य के वीच की दीवारे गिरानी है।

राजयोगी—दीवारे गिरानी है। मेवाड के जन-साधारण के मन मे भी अपने देश के प्रति उतनी ही ममता जाग्रत करनी है, जितनी गहलोत राजवंश के मन मे है। भील और राजपूत एव सभी अन्य जन-साधारण को एक ध्वजा के नीचे भाई-भाई की तरह एकत्र करना है।

संग्रामसिह—(ज्वाला से) तुम असाधारण नारी हो। तुममे महान् शक्ति है, यह तुमने प्रदर्शित कर दिया है। इतने दिन तुमने भ्रातिवश विध्वंस की शक्ति प्रदर्शित की। अव निर्माण की शक्ति दिखाओ। मेवाड राजकुल का मान रखने के लिये जिसने अपने पिता से विद्रोह किया, क्या वह साधारण नारी है? क्यो तुम अपने गौरव-मय पद को स्वय गँवाती हो। सोचो वहन, इतिहास तुम्हारे लिये क्या कहेगा?

राजयोगी--(ज्वाला के मस्तक पर हाथ रखकर) वेटी, तुमको कव से भवानी अपने मन्दिर मे वुला रही है। तुम तो नित्य उसके मन्दिर मे पूजा करने आती थी। भवानी को इस वात का दुःख है कि तुम दैत्यो के दल मे जा मिली हो। वह दैत्यो पर शस्त्र चलाने मे संकोच नही करती, किन्तु तुमने तो कितनी ही वार भक्ति से गद्गद् होकर अपने आँसुओ का हार उसे पहनाया है। वह तुम्हारे उस रूप को नही भूल पाती। वह तुम पर शस्त्र कैसे उठावे! तुम कितने काल से निरन्तर उसके हृदय पर प्रहार कर रही हो, उसने तुम्हारे प्रहार वात्सल्यमयी क्षमाशील माँ की भाँति सहे है और सह सकने की उसमे शक्ति है। मेवाड पर प्रहार करना भवानी के हृदय पर प्रहार करना है। वेटी! वोलो, कव तक तुम माँ भवानी से विद्रोह करती रहोगी।

ज्वाला—यदि सत्व और सम्मान की रक्षा करने का यत्न करना भवानी के आदेश के विरुद्ध है, तब तो ज्वाला भवानी से भी विद्रोह करेगी। स्वय भवानी मेवाड की वर्तमान अन्यायी राजसत्ता के पक्ष में युद्ध करने आवे तब भी ज्वाला युद्ध से विमुख नही होगी।

संग्रामसिह—दादा भाई, तुम क्या कहते हो ?

सूरजमल—मेरा मस्तक काटकर भवानी के चरणों पर चढ़ा दो!

संग्रामसिंह—किन्तु मेवाड़ सूरजमल जी के सबल कन्धो पर अवस्थित सजीव उन्नत मस्तक की माँग करता है। उसे उनकी सबल सुदीर्घ भुजाओ की चाह है जो हाथो मे खड्ग धारण कर मेवाड के शत्रुओ का हृदय विदीर्ण करती रहे।

सूरजमल—सग्रामसिह! मेवाड़ को यह चाह तभी पूर्ण हो सकेगी जब सूरजमल के मस्तक पर मेवाड़ का राजमुकुट रखा जायगा। सूरजमल बार-बार मार्ग नही बदलता।

संग्रामसिह—मै तो कह चुका हूँ, संग्रामसिंह दादा भाई की आकाक्षा के पथ में नही आवेगा।

तारा—किन्तु मेवाड के महाराणा अथवा प्रजाजन देश-द्रोही को राजगद्दी के उत्तराधिकारी के रूप मे स्वीकार नहीं करेगे।

सूरजमल—सूरजमल की तलवार में ताकत होगी तो वह मेवाड से अपनी बात मनवा लेगा।

तारा—ह: ह' मनवा लेगा। इस समय तो आपका जीवना भी हमारी दया पर निर्भर है। आपका यहाँ से अपने शिविर तक जा सकना भी असम्भव है।

ज्वाला—किन्तु हमें जीते जी वन्दी बनाने की शक्ति भी किसी मे नही है।

संग्रामसिंह—किन्तु मै पहले ही कह चुका हूँ—सग्रामसिंह क्षत्रित्व को

लज्जित नही करेगा। अपने भाई-बहनो को बन्दी बनाने अथवा उनका मस्तक काटने के लिये संग्रामसिंह नही आया। आप लोग जा सकते है, अपने सहायको की छत्रछाया मे पहुँच सकते है।

(ज्वाला और सूरजमल साश्चर्य संग्रामसिंह की ओर देखते हैं।)

संग्रामसिंह–विश्वास नही होता मेरी वाणी पर ?

सूरजमल–विश्वास क्यो नही होता, गहलोत वश मे जन्म लेने वाला राजपूत किसी की पीठ पर आघात नही करेगा। अच्छी बात है, कल हमारी तलवारे मिलेगी। सम्भवत यह सूरजमल के जीवन का अन्तिम युद्ध होगा। कल मेवाड के भाग्याकाश के गृह-कलह के बादल अन्तिम रक्त-वर्षा करके समाप्त हो जायेगे। (ज्वाला से) चलो ज्वाला !

(ज्वाला और सूरजमल का प्रस्थान)

तारा–(संग्रामसिंह से) किन्तु . .

संग्रामसिंह–(तारा की बात काटकर) मै जानता हूँ तुम क्या कहना चाहती हो। शत्रु को मुट्ठी मे पाकर छोड़ देना मूर्खता है, लेकिन तारा, मै मेवाड़ की राजनीति को एक नए ही रास्ते पर ले जाना चाहता हूँ। कल सूरजमल और संग्रामसिंह की तलवारे टकरायेगी और इसी टक्कर से जो विद्युत् प्रकाश होगा, उसी मे हमे स्नेह का मन्दिर दिखाई देगा। चलो, अब हमे भी शिविर पर चलना चाहिये।

(सब का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—प्रथम अंक के प्रथम दृश्य वाला। समय—सध्या। पर्दा उठता है तो महाराणा रायमल एवं महारानी शृंगारदेवी, दोनों रण-सज्जा सज्जित, कीर्ति-स्तम्भ के निकट खड़े दिखाई देते हैं।)

महाराणा रायमल—महारानी, अस्तोन्मुख दिवाकर की अन्तिम रश्मियो ने आकाश को लाल कर दिया है।

शृगारदेवी—जान पड़ता है सूर्यदेव ने आज आकाश-सुन्दरी की हल्के नीले रग की चूनरी पर गहरा लाल रग डाला है।

महाराणा रायमल—शृंगारदेवी, अद्भुत रगीन उपमा दी है तुमने! हाथो में शस्त्र पकड़ लेने पर भी तुम्हारे जीवन की रगीनी समाप्त नही हुई।

शृंगारदेवी—महाराणा जी, राठौर पुत्री एवं गहलोत राजरानी शृगार-देवी को गहरा रग ही प्रिय है।

महाराणा रायमल—हाँ, कुसुंबा का भी गहरा रग। नशे का भी गहरा रंग।

शृगारदेवी—हाँ, दुख का भी गहरा रग, क्रोध का भी गहरा रंग, सर्वनाश की ज्वाला का भी गहरा रग। उसने अपने हाथों मे तलवार भी पकडी है तो मेवाड-भूमि को गहरे लाल रंग से रग देने के लिये ही। मै तो युद्ध की रगीन घड़ी को तुरन्त निकट लाना चाहती हूँ। कब तक हम प्रतीक्षा करते रहेंगे कि शत्रु चित्तौड पर घेरा डाले। हमे बढकर मैदान मे उससे लोहा लेना चाहिये।

महाराणा रायमल—मै भी प्राणो को प्रपीड़ित करने वाली प्रतीक्षा

की बेचैन घड़ियों को समाप्त कर देना चाहता हूँ। अस्तोन्मुख भास्कर की भाँति भूमि और अम्बर को गहरे रक्तिम रग से रगकर मै ससार से अन्तर्धान हो जाना चाहता हूँ।

(दूर से आता हुआ शंख, भेरी एवं नगाड़ों का नाद सुनाई देता है।)

शृगारदेवी–सुनो महाराणा जी, आपके स्वर मे स्वर मिलाकर दिशाएँ भी शख-नाद कर उठी है।

महाराणा रायमल–और इधर देखो, धूल का एक बादल-सा उठ रहा है।

शृगारदेवी–जान पडता है, जोधपुर से राठौर सेना हमारी सहायता के लिये आ पहुँची है।

महाराणा रायमल–राठौर सेना ?

शृगारदेवी–हाँ महाराणा जी, मैने मेवाड की दुर्बल स्थिति देखकर जोधपुर को सन्देश भेजा था। जोधपुर के राठौरो और मेवाड के गहलोतो की सम्मिलित शक्ति मालवा के सुलतान के छक्के छुडा देगी। सिरोही नरेश भी अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिये पहले ही सदलबल आ ही गये है।

महाराणा रायमल–यह सब ठीक है, फिर भी राजकुमारो के अभाव मे मुझे ऐसा जान पडता है, मानो मेरी भुजाएं कट गई है। राठौर सेना एव सिरोही की सेना को भी गिन ले, तब भी हमारी सेना शत्रु की विशाल वाहिनी के सम्मुख समुद्र की तुलना मे छोटी झील के समान है। निरन्तर युद्ध-रत रहने के कारण हमारे सैनिक समाप्त हो गये है।

शृगारदेवी–किन्तु फिर भी हमारी सेना मे आत्मविश्वास का अभाव नही है।

महाराणा रायमल–आत्मविश्वास न कहो शृगारदेवी, बलिदान-भावना कहो, मर मिटने की लगन कहो, एक पागलपन कहो। किन्तु मै

पूछता हूँ, इस पागलपन के साधन से क्या हम इस कीर्ति-स्तम्भ को स्थिर रख सकेंगे ? उस दिन लाल-लाल रक्त के रंग से अनुरंजित प्रभात था, जब तीनो राजकुमारो को मैने इसी कीर्ति-स्तम्भ के निकट एकत्र कर कहा था—इसकी आधार शिलाएँ काँप रही है। अदृश्य के कठोर हाथो ने राजकुमारों को हमसे छीन लिया। वे होते तो अपनी सबल भुजाओ द्वारा इस कीर्ति-स्तम्भ की रक्षा करते। अब तो मै एक सर्वनाशी ज्वाला को चित्तौड़ दुर्ग के भीतर और बाहर प्रज्वलित होते देख रहा हूँ।

(सहसा एक विस्फोट सुनाई देता है।)

शृंगारदेवी—यह विस्फोट कैसा ? यह तो दुर्ग के भीतर ही हुआ जान पडता है। लो, धुएँ के काले-काले बादल उडकर आकाश को आच्छादित करने लगे।

महाराणा रायमल—धुएँ के बादल ही नही छा रहे, अपितु ज्वाला की सर्वभक्षी सहस्रो जिह्वाएँ लपलपा उठी है। यह ज्वाला उधर प्रज्वलित हुई जान पडती है जिधर हमारा अन्न का भण्डार है।

शृंगारदेवी—अर्थात् किसी व्यक्ति ने विश्वासघात किया है।

(शंख, भेरी और नगाड़ों की ध्वनि एवं घोड़ों के टापों की आवाज अधिक निकट आती है।)

महाराणा रायमल—सुनती हो, यह तुमुल नाद निकटतर आ रहा है। एक ओर आकाश को छूने वाली लपटे हमें अपनी गोद मे बिठा लेने को लालायित है, दूसरी ओर शत्रु-सेना का तुमुलनाद हमारे वक्षस्थल को विदीर्ण कर रहा है। महारानी, हमे राज-बलि देने को प्रस्तुत हो जाना चाहिये, जिसे तुम राठौरों की सेना समझती हो वह वास्तव में शत्रु-सेना है।

शृंगारदेवी—मालवा के सुलतान की सेना का आगमन शंखनाद से घोषित नही हो सकता, महाराणा जी !

महाराणा रायमल—किन्तु, सूरजमल तो शख-नाद करता हुआ ही चित्तौड मे प्रवेश करेगा। आज असत्य के आगे सत्य, पाप के आगे पुण्य को पराजित होना ही पड़ा। जिस मेवाड़ भूमि की स्वाधीनता की रक्षा के लिये शताब्दियो से वीर योद्धाओ एव वीरागनाओ ने प्राणो की आहुति दे दी हैं, उसे कुछ दुष्ट और दम्भी मेवाडियो के दुराग्रह से विदेशियो द्वारा पद-दलित होना पडेगा। यह जय-नाद मेवाड के शत्रुओ का है।

(शख-ध्वनि करते हुए राजयोगी का प्रवेश।)

राजयोगी—नही महाराणा जी, यह जयघोप मेवाडी योद्धाओ का ही है।

महाराणा रायमल—मेवाडी सेना को तो मैने गढ मे ही एकत्र कर रखा है। अभी तो शत्रु का चित्तौड पर आक्रमण ही नही हुआ, जय का क्या प्रश्न ?

राजयोगी—महाराणा जी, शत्रु को चित्तौड तक आने देना मेवाड के वीर योद्धाओ ने अपना अपमान समझा और ससार जानता है कि मेवाड का प्रत्येक व्यक्ति संकट-काल मे स्वेच्छा से शस्त्र धारण कर सकता है।

(हाथ में मेवाड की राजपताका लिये एक भील सैनिक के छद्मवेश में संग्रामसिंह का सूरजमल और ज्वाला को वन्दी वनाये हुए कुछ भील सैनिको सहित प्रवेश।)

तारा—मेवाड के सम्मान के सरक्षक, मेवाड के सच्चे सपूत आज मालवा के सुलतान की सेना को पराजित कर कुल और देश से द्रोह करने वाले सूरजमल और ज्वाला को वन्दी वनाकर महाराणा का आशीर्वाद प्राप्त करने आये है।

शृगारदेवी—किन्तु उधर देखो, वह ज्वाला भी तुम्हारी सेना ने ही प्रज्वलित की है ?

तारा—नही, हम तो स्वयं ही इस ज्वाला को देखकर आश्चर्यचकित है। मैंने तो यह समझा था कि हमारी सेना को शत्रु-सेना समझ कर चित्तौड़ दुर्ग में स्थित क्षत्राणियाँ जौहर की ज्वाला को प्रज्व-लित कर अपने सम्मान की रक्षा के लिये महासती महारानी पद्मिनी की परम्परा का पालन कर रही हैं।

(यमुना का प्रवेश)

यमुना—(ज्वाला से) अनर्थ हो ही गया राजकुमारी ! मैं उन्हे रोक नही पाई। सिरोही नरेश ने मालवा की सेना को निकट आई जानकर योजना के अनुसार अन्नागार मे आग लगा ही दी, किन्तु जब उन्हे ज्ञात हुआ कि यह मेवाड़ की विजयी सेना है, तो उन्होने भी अग्नि मे प्रवेश कर जीवनाहुति दे दी !

ज्वाला—सचमुच अनर्थ हो गया यमुना !

यमुना—(महाराणा से) महाराणा जी, इस अनर्थ का कारण मै हूँ, मुझे दण्ड दीजिये। मेरे ही कारण राजकुमार पृथ्वीराज के प्राण गये। मैने ही पिशाचिनी बनकर राजकुमारी आनन्ददेवी की माँग का सिंदूर चाट लिया। महाराणा जी, मुझ हत्यारिन को दण्ड दीजिये।

महाराणा रायमल—(राजयोगी से) राजयोगी जी, मै यह सब क्या देख और सुन रहा हूँ। आपने आते ही कहा—आप मेवाड़ी सेना का जयघोष सुन रहे हैं, किन्तु मुझे न तो कही मेवाड़ी सेना दिखाई देती है न कही जयघोष सुनाई देता। मुझे तो इस समय मेरी पुत्री के सौभाग्य को निगल लेने वाली ज्वाला ही दिखाई दे रही है। वर्तमान मे तो क्या, भविष्य के गर्भ मे भी मुझे तो भयंकर ज्वाला की लपटे दिखाई दे रही है। राजयोगी, मेरे प्राण इस अनुताप को सह नही सकते। अब तो मुझे भी उस भयानक ज्वाला की गोद में बैठकर प्राणो की ज्वाला को शांत करना होगा।

राजयोगी—आप जैसे दृढ निश्चयी वज्रहृदय महान् व्यक्ति को विचलित नही होना चाहिये। आगामी पीढी को सुखी बनाने के लिये इस पीढी को सब प्रकार की यातनाये सहनी पडेगी। जो व्यक्ति अपने मस्तक पर राजमुकुट धारण करता है, उसे सबसे अधिक बलिदान देना पडता है।

ज्वाला—काका जी, विध्वस का खेल अपनी चरमसीमा पर पहुँच कर अब समाप्त हो गया है। खेल मे हार कैसी ? जीत कैसी ? अनुताप कैसा ? शाति कैसी ? आप क्षत्रिय है, भगवान् राम के वशज है, आपका जीवन लोक-कल्याण के लिये है। क्रोध मे आकर मैंने और दादा भाई ने मेवाड की राजलक्ष्मी को रक्त के समुद्र में विसर्जित करना चाहा, किन्तु आपके तेजस्वी और दूरदर्शी पुत्र ने इस डूबती हुई नैया को उबार लिया और हमे भी उबार लिया।

महाराणा रायमल—मेरा पुत्र ? कौन-सा पुत्र ?

(सग्रामसिह आगे बढ़कर महाराणा के चरण छूता है।)

सग्रामसिह—(कृत्रिम स्वर में) मेवाड का प्रत्येक व्यक्ति आपका पुत्र है।

सूरजमल—और इस नाते सूरजमल भी आपका पुत्र है। बँधे न हो तो मेरे हाथ जो कल तक आपके मस्तक के ग्राहक रहे है वे आपके चरणो की रज अपने मस्तक पर धरने मे सौभाग्य माने।

सग्रामसिह—(नकली दाढ़ी-मूँछें हटाकर) दादाभाई, मेवाड यही तो आपके मुख से सुनना चाहता था। (भील सैनिको से) बदियो के बधन खोल दो। (सैनिक ज्वाला और सूरजमल के बंधन खोलते हैं।) संग्रामसिह ने सारे मेवाडियो को बधन-मुक्त करने के लिये वनवास और अज्ञातवास का व्रत लिया था। आज उसके प्रकट होने की स्वर्णबेला आ गई है।

महाराणा रायमल—(सग्रामसिह को कलेजे से लगाकर) बेटा, आज मै हँसू

या रोऊँ क्या करूँ।(आँखो से अश्रु प्रवाहित होते हैं।)

शृगारदेवी–(सग्रामसिंह के मस्तक पर हाथ रखकर) बेटा! आज तुममे मेवाड़ का सम्पूर्ण सौभाग्य और गौरव लौट आया है।

(अश्रु प्रवाहित होते हैं।)

सूरजमल–(महाराणा रायमल के चरणों में मस्तक रखकर) गगा-यमुना की पवित्र धाराओ के समान, इन आँखों के अश्रु-प्रवाह से मै अपनी पाप-कालिमा को धोकर नया ही व्यक्ति बन जाना चाहता हूँ।

(आँखों में आँसू छा जाते है।)

महाराणा रायमल-(प्रकृतिस्थ होकर सग्रामसिंह और सूरजमल को अपने निकट खड़ाकर) मेवाडी की शक्ति, सम्मान और विश्वास के प्रतीक राज-कुमारो, स्वर्ग मे बैठे हुए वीरवर कुम्भा जी की वीणा को सुनो।

राजयोगी–वे कह रहे है—स्वार्थ, अभिमान और क्रोध मे आकर कभी जन्मभूमि के हित को मत भूलो। सत्ता और सम्मान पाने के लिये प्रतिस्पर्धा की भूल मत करो। क्षणिक लाभ के लिये देश के शत्रुओ को मित्र समझने की भूल मत करो। देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने समान समझो।

महाराणा–और अपने मस्तक पर राजमुकुट धारण कर अपने आपको एकलिंग का दीवान समझो, राजा नही। तभी तुम इस कीर्ति-स्तम्भ की रक्षा कर सकोगे।

राजयोगी–मेवाड़ भूमि की जय!

सब–मेवाड भूमि की जय!

[पटाक्षेप]